तेजस्वी व्यक्तित्व

संस्करण
प्रथम (5,000 प्रतियाँ)

मुद्रक
इमप्रिन्ट सर्विस
दिल्ली

सहयोग : ₹ 20.00 मात्र

प्रकाशक :
विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी, दिल्ली विभाग
3, सान मार्टीन मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-110021
फोन : 011-24121764
E-mail : delhi@vkendra.org Website : www.vkendra.org

अनुक्रम

प्रस्तावना	1
स्वामी विवेकानन्द का जीवन व सन्देश	5
पुण्यभूमि भारत	30
धर्म: भारत की आत्मा	34
वर्तमान पीड़ा	37
सफल जीवन का रहस्य	40
संगठन सूत्र	60
पुनरुत्थान का कार्य	63
विवेकानन्द केन्द्र : मञ्च युवा शक्ति का	73

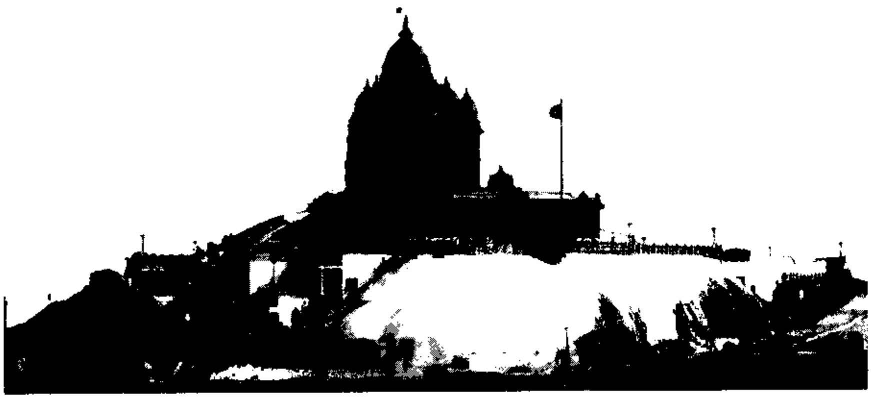

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द से किसी ने पूछा कि जीवन क्या है ? स्वामीजी ने उत्तर दिया। ंघर्ष ही जीवन है। संघर्ष का लक्ष्य है विजय। अर्थात् विजय ही जीवन है। विजय ही लक्ष्य है। वेजय ही मर्म है। विजय ही धर्म। यह हर स्तर पर सत्य है। केवल संघर्ष में ही विजय नहीं है। वेजय तो सदैव होती रहती है। जिसने भी जीवन में गम्भीरता से विचार किया उसके जीवन में विजय का पथ प्रारम्भ हो गया। आज प्रत्येक व्यक्ति ज़ीवन में कुछ पाना चाहता है। विज्ञान ा युवा के सम्मुख अनेक विकल्प प्रस्तुत किये हैं। ज्ञान के और व्यवसाय के नवीनतम क्षेत्र में म आगे बढ़ रहे हैं। एक व्यक्ति के रूप में, समाज के रूप में, राष्ट्र के स्तर पर और समूची ानवता के स्तर पर उपलब्धियों के नव-नवीन आयाम सामने आ रहे हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति जीवन में अधिक से अधिक सफलता प्राप्त करना चाहता है। सफलता के पीछे भागनेवाला आधुनिक मानव भी वास्तव में विजय की कामना से ही प्रेरित होता है। सफलता विजय के समक्ष अधूरी लगती है। सफलता तो फल के साथ जुड़ी है और यह तो सनातन सत्य है कि प्रयत्न करना हमारे हाथ में है। सफलता में तो अनेक ऐसे कारक जुड़े हैं, जो हमारे नियन्त्रण से परे हैं। अत: हम अपनी पूर्ण क्षमता से कर्म कर सकते हैं। सफलता पर दावा नहीं कर सकते। इसी कारण आधुनिक जीवन में तनाव अधिक है। संतुष्टि नहीं है कि प्रयासों के अनुपात में सफलता मिलेगी। सफलता की कीमत अपने स्वास्थ्य से नी पड़ रही है।

प्रकृति, सृष्टि और ब्रह्माण्ड पर विजय करने निकला मानव स्वयं से ही पराजित होता ा रहा है। स्वामीजी ने कहा है- विश्व पर विजय करनी है तो **स्वयं पर विजय करनी होगी।** ो वह मार्ग क्या होगा ? क्या ऐसा सम्भव है कि बिना किसी को कष्ट दिये पूर्ण सफलता पाई ा सके ? और क्या सभी एकसाथ पूर्ण विजय प्राप्त कर सकते हैं? भारतीय संस्कृति ऐसे ही वेजय की संकल्पना करती है। सबके सम्पूर्ण सुख की संकल्पना। केवल आदर्श ही नहीं, मारे ऋषियों ने इसे व्यवहार में साकार करने की विधि भी विकसित की थी। किसी और को ष्ट दिये बिना पूर्ण सुख पाने का मार्ग।

वर्तमान समय में भी इस विजय को पाने की दो विधियाँ हो सकती हैं। एक तो किसी जीवन में इन तत्त्वों को देखकर अपने जीवन में अपनाना और दूसरा मार्ग सिद्धान्त को ात्मसात् कर जीवन में उतारना। इस पुस्तक में दोनों विधियों की व्यवस्था करने का प्रयत्न कया गया है। स्वामी विवेकानन्द का जीवन सभी परिस्थितियों में युवाओं के लिये आदर्श । उनके जीवन का संघर्ष, वैज्ञानिक दृष्टि और फिर विश्वविजय के बाद भी स्नेहपूर्ण संवेदना, भी अनुकरणीय। आज भी स्वामीजी के अद्‌भुत जीवन से हम अपने भविष्य को सर्वोच फलता दिला सकते हैं । युवा मन की उथल-पुथल को राह दिखाने का सामर्थ्य स्वामीजी चरित्र में है। उनकी जीवनी को इसी उद्देश्य से इस पुस्तिका में सम्मिलित किया गया है।

'सफल व्यक्तियों की 7 आदतें' इस विश्वविख्यात ग्रंथ के लेखक श्री स्टीफन क
ने जब आठवीं आदत को लिपिबद्ध किया तो कहा, ''स्वयं का प्राणस्वर पाना तथा औ
को उनके प्राणस्वर को पाने में सहयोग करना।'' यह सफल व्यक्ति की आठवीं और सब
महत्त्वपूर्ण आदत है। अनेक व्यक्तियों के उदाहरण देते हुए कवि कहते हैं - ''जब तक व्यक्ति
अपने जीवन के मूलस्वर को नहीं पा लेता तब तक अनेक उपलब्धियों के होते हुए भी अध
ही होता है। इसी बात को स्वामी विवेकानन्द अत्यन्त सहजता से प्रगट करते है।'' "Be
Make" ''स्वयं चरित्रवान् बनो और दूसरों को भी चरित्रवान् बनाओ।'' इस विचार
व्यवहारिक रूप को भी स्वामीजी स्पष्ट करते है। स्वामी विवेकानन्द प्रणीत व्यक्तित्व-विका
के इस परिपूर्ण विज्ञान को भी इस पुस्तिका में संकलित किया गया है।

इस प्रक्रिया को सहज, सरल एवं निश्चित करने का माध्यम है संगठन। संगठित होक
करने पर यह दोनों कार्य सहज सुनिश्चित हो जाते हैं। विवेकानन्द केन्द्र का जन्म इसी मह
उद्देश्य से हुआ है। और यह पुस्तक युवाओं को अपने जीवन में चमत्कार करने का अवस
प्रदान अवश्य करेगा । युवा ही राष्ट्र का मेरुदण्ड है। युवा में यदि विजय का उत्साह व ध्ये
अनुप्राणित हो तब ही राष्ट्र भी विजय पथ पर अग्रसर होगा, तब ही उसमें पूर्ण सार्थक
होगी। जब तक विजय समग्र और सम्पूर्ण नहीं हो तब तक तो वह विजय ही नहीं कहलायेग
अत: समष्टि की जय में जो स्वयं की विजय का मार्ग पा लेता है। उसकी तो सदा विजय
विजय है।

इस पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग देनेवाले सभी
साधुवाद करना हमारी क्षमता से परे है। सामग्री के संकलन में विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुम
की राष्ट्रीय उपाध्यक्षा कुमारी निवेदिता दीदी का पूर्ण योगदान रहा है। स्वामीजी की जीव
भी उन्हीं के द्वारा शब्दबद्ध की गई है। सबसे महत्त्वपूर्ण अर्थात् पढ़कर आत्मसात् करनेव
आप सभी पाठकों को साधुवाद । व्यक्तिगत चरित्र ही राष्ट्र पुनुर्त्थान का आधार है। अ
तेजस्वी व्यक्तित्व में ही राष्ट्र पुनुर्त्थान संभव है।

• दिल्ली विभाग
विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमा

स्वामी विवेकानन्द का जीवन व सन्देश

आप ही युवा भारत हैं–

क्या आप यह आह्वान सुन रहे हैं, ''उठो, जागो'' ?

यह वही ध्वनि है जिसकी राष्ट्र को कबसे प्रतीक्षा थी।

यह वही ध्वनि है जिसने उसको कुम्भकर्णी निद्रा से जगाया।

वह कौन है जिसने इस शक्तिशाली ध्वनि से राष्ट्र में बिजली का सञ्चार कर दिया ? एक युवक जो आनेवाले समय में सदैव एक आदर्श बने रहने के लिए युवावस्था में ही चल बसा। यह आह्वान करनेवाला शाश्वत युवक और कोई नहीं, वही राष्ट्रवादी हिन्दू सन्त विवेकानन्द था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरकाल में भौतिकवाद, व्यक्तिवाद और अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए दूसरों का शोषण ,चरम पर थे। ऐसा लगता था, मानो ये सब अन्योन्याश्रय हों। परोपकार और अध्यात्म अपने आधार खोते जा रहे थे। वह भारत जिसके राष्ट्रीय जीवन में इनका सामान्य रूप से व्यवहार होता था, अपने में अविश्वास और सदियों पुराने मूल्यों में गिरावट के कारण बड़े संकट में दिखाई पड़ रहा था। परन्तु , इस अमर भूमि का, चुनौतियों का सामना करने का अपना ही अन्दाज़ रहा है। भारत के परिदृश्य में श्रीरामकृष्ण परमहंस और उनके महान् शिष्य स्वामी विवेकानन्द अवतरित हुए।

महान् विचारक और नोबेल पुरस्कार विजेता कविश्रेष्ठ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था, ''आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सभी कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है।''

स्वामी विवेकानन्द में इन बातों का अनूठा मिश्रण था–

- उनमें प्राचीन और अर्वाचीन का मेल था।
- उनमें पूर्व और पश्चिम का मेल था।
- उनमें आदर्श और व्यवहार का मेल था।
- उनमें राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता का मेल था।
- उनमें विज्ञान और अध्यात्म का मेल था।

बचपन

स्वामी विवेकानन्द या नरेन्द्रनाथ दत्त या केवल नरेन, जिस नाम से वे अपने संन्यासी जीवन से पहले जाने जाते थे, का जन्म सोमवार 12 जनवरी, 1863 को

कोलकाता में विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी के घर हुआ था। दत्त परिवार धनी और प्रतिष्ठित परिवार था। वह अपनी दानशीलता और विद्वत्ता के लिए विख्यात था। विश्वनाथ दत्त कोलकाता उच्च न्यायालय में अॅटॉर्नी-एट-लॉ थे। विश्वनाथ बाबू फिजूलखर्च की सीमा तक दानी थे। वे गरीबों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले होते हुए भी धार्मिक और सामाजिक मामलों में तार्किक तथा प्रगतिशील थे। भुवनेश्वरी देवी राजसी ठाठ की निपुण महिला थीं। वे बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की थीं।

बचपन से ही नरेन्द्र अशान्त होते हुए भी आमोद-प्रमोदवाले विनोदी जीव थे। साथ ही उन्हें आध्यात्मिक बातों से बड़ा लगाव था। वे खेल-खेल में भी राम, सीता, शिवजी आदि की मूर्तियों के सामने पूजा और ध्यान में लग जाया करते थे। उनकी माता उन्हें रामायण-महाभारत की जो कथा सुनातीं, उनकी उनके मन पर अमिट छाप पड़ती थी। उत्साह, गरीबों के प्रति दया, यायावर सन्तों के प्रति आकर्षण जैसी विशेषताएँ उनमें अचानक उभर आया करतीं थीं। बचपन से ही नरेन्द्र हर समस्या का सन्तोषजनक हल माँगने लगे थे। मन-मस्तिष्क में इन गुणों के साथ वे एक तेजस्वी युवक बन गये।

श्रीरामकृष्ण के श्रीचरणों में

युवक नरेन का शारीरिक सौष्ठव सिंह के साहस के समान जँचता था। उनका कसरती बदन गठा हुआ था, उनकी वाणी हुंकारभरी और प्रतिभा देदीप्यमान् थी। उन्होंने दर्शन, संगीत और व्यायाम में अपनी पहचान बना ली थी, जिससे अपने साथियों में निर्विवाद नेता हो गये थे। महाविद्यालय में उन्होंने पाश्चात्य विचारधारा का अध्ययन करके उसे आत्मसात् कर लिया था। इससे उनके मन में गहन गवेषणा का भाव पैठ गया। एक ओर तो उनमें अध्यात्म की प्रवृत्ति और प्राचीन धार्मिक परम्पराओं और विश्वासों के प्रति सम्मान था, तो दूसरी ओर तर्क करने के स्वभाव के साथ-साथ कुशाग्र प्रतिभा, तब इन दोनों में संघर्ष होने लगा था। ऐसी विकट स्थिति में उन्होंने तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनवाले ब्रह्मसमाज में सान्त्वना पाने का प्रयास किया। ब्रह्मसमाज निराकार ईश्वर को मानता है, मूर्तिपूजा को उचित नहीं मानता और अन्यान्य क्षेत्रों में अपने को समाज-सुधारक बताता है। किसी भी युवक द्वारा ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न करना स्वाभाविक है, परन्तु प्रश्न करके शान्त रह जाना पर्याप्त नहीं होता। प्रश्न अनुसन्धान का प्रेरक होना चाहिए। नरेन अनेक बड़े-बड़े धार्मिक नेताओं से मिले, परन्तु ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उनके प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल सका। अतः, इन मुलाकातों से उनकी बेचैनी और बढ़ गई थी।

इस नाजुक मोड़ पर उन्हें अपने प्रोफेसर विलियम हेस्टी के शब्द याद आ गये, जिन्होंने कोलकाता के पास ही दक्षिणेश्वर में रहनेवाले एक सन्त का उल्लेख किया था, और जिनको वर्ड्सवर्थ की कविता ''द एक्सकर्शन'' में वर्णित परमानन्द की अनुभूति

हुई है। उनके चचेरे भाई रामचन्द्र दत्त ने भी उन्हें इस सन्त से मिलने को प्रेरित किया। इस प्रकार सन् 1881 में इन दो महान् आत्माओं की महान् ऐतिहासिक भेंट हुई – भारत के भविष्यवेत्ता और उनका सन्देशवाहक। नरेन्द्रनाथ ने पूछा, ''महाशय, आपने ईश्वर को देखा है ?'' श्रीरामकृष्ण ने उन्हें हाँ में उत्तर देते हुए कहा, ''हाँ, मैंने उसे वैसे ही देखा है, जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, बल्कि अधिक भावपूर्ण ढंग से।'' आखिर ऐसा कोई तो था जिसने अपने अनुभव से ईश्वर के अस्तित्व के प्रति आश्वस्त किया। अब तो श्रीरामकृष्ण का अनुगमन करके इस निश्चयात्मकता का सत्यापन करना बचा था। शिष्य का पाठ शुरू हो गया।

एक ओर श्रीरामकृष्ण ने नरेन की नाना प्रकार से परीक्षा ली, तो नरेन ने भी श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक दावों को परखा। एक अवस्था वह आई जब 1884 में नरेन के पिता का निधन हो जाने पर, उनके परिवार को अनेक कठिनाइयाँ और तंगी झेलनी पड़ी। इस प्रकार नरेन को अपने जीवन में अमीरी और गरीबी दोनों का अनुभव हुआ। उन्होंने ईश्वर के साकार अस्तित्व को नहीं माना था। परन्तु घर की घोर परेशानियों ने और गरीबी ने, कुछ सहायता पाने के लिए, उन्हें फिर श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचा दिया। उनके गुरु ने उन्हें पारिवारिक कष्टों के निवारण के लिए दक्षिणेश्वर की माँ काली की पूजा करने को कहा। जब वे मन्दिर में गये, तब उन्होंने देखा कि चिन्मयी माता उन्हें वरदान देने के लिए स्मित मुद्रा में खड़ी हैं। यद्यपि उन्हें लगा था कि उन्हें धन की आवश्यकता है, तथापि वे उनसे ज्ञान और भक्ति ही माँग पाए।

शनैः-शनैः नरेन ने गुरुजी के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। श्रीरामकृष्ण ने असीम धैर्य के साथ अपने युवा शिष्य की विद्रोही आत्मा को शान्त किया और उसे शंकाओं से निकालकर निश्चयात्मकता में और क्रोध से निकालकर आनन्द धाम में ले गये। परन्तु श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और सहारे से अधिक उनका नरेन्द्र के प्रति प्रेम था, जिसने नरेन्द्रनाथ को जीत लिया था तथा शिष्य के हृदय में भी भरपूर प्रेम उमड़ा था।

जब श्रीरामकृष्ण को बीमारी के कारण, कोलकाता के निकटवर्ती क्षेत्र काशीपुर में उपचार के लिए ले जाया गया, तब अपने गुरु के अधीन नरेन्द्र की शिक्षा को अन्तिम रूप मिला। यही विलक्षण समय था जब वे अपने भीतर तीव्र वेग से जलनेवाली अध्यात्म की आग को अपने नाना गहन अभ्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त कर सके थे। गुरुजी ने अपने युवा शिष्यों को नरेन्द्र के नेतृत्व में लाकर, इस अवसर का उपयोग किया। जब नरेन्द्र ने कहा कि उन पर निर्विकल्प समाधि की कृपा की जाय, जिसे साधारणतया सर्वोच्च कोटि की आत्मानुभूति माना जाता है, तब गुरुजी ने उन्हें यों

फटकार लगाई थी, ''निर्लज्ज ! मैंने तो सोचा था कि तुम एक वटवृक्ष की तरह विशाल रूप धारण करोगे जिसकी छाया में संसार के सन्ताप से हज़ारों दुखियारों को छाया मिलेगी। परन्तु मुझे तो लग रहा है कि तुम केवल अपनी मुक्ति चाहते हो।'' नरेन्द्र को भी उस लिप्सा का आभास हो गया था।

परिव्राजक

अगस्त 1886 में गुरुजी का देहावसान हो जाने के बाद, बारानगर में एक पुराने खण्डहर में बहुत-से युवा शिष्य नरेन्द्र के नेतृत्व में एकत्र हुए। यहाँ बड़ी सादगी का जीवन और आध्यात्मिक अभ्यासों के चलते ''रामकृष्ण बन्धुत्व '' की नींव रखी गई। इन्हीं दिनों नरेन्द्र अपने बहुत-से शिष्यों के साथ अन्तपुर गये और वहाँ क्रिसमस के दिन अग्नि को घेरा लगाकर बैठे तथा संन्यास का व्रत लिया। अब अधिकांश सन्तों को संन्यासियों के घुमन्तू जीवन की पुकार सुनाई पड़ी। तब सन् 1888 के बीतते-न-बीतते नरेन्द्र ने भी मठ से दूर, अपने जीवन के लक्ष्य की घोर पिपासा में अस्थायी तौर पर भ्रमण शरू कर दिया।

रोमाँ रोलाँ के शब्दों में यह एक 'महाप्रयाण' था। एक गोताखोर की तरह वे भारत-सागर में डूब गये और अपने मार्गों को पा लिया। बहते माल-फेंके माल की तरह, केसरिया वेश में दूसरे हज़ारों संन्यासियों में, वे भी एक अनाम संन्यासी से अधिक कुछ नहीं थे। उनके नेत्रों में प्रतिभा का तेज था। सभी रूपों में वे राजकुमार से कम न थे।

अपने भ्रमण के दौरान नरेन्द्र ने भारत की दशा का सभी पहलुओं से श्रेष्ठ अनुभव प्राप्त किया। जबतक श्रीरामकृष्ण जीवित रहे, विवेकानन्द ने उन्हें दिन-दिन ईश्वर में अधिकाधिक डूबते हुए पाया था। देखने में श्रीरामकृष्ण सामान्य व्यक्ति दिखाई पड़ते थे, परन्तु उनका सारा जीवन ईश्वरमय रहा। वे हर व्यक्ति के साथ गाते, ठिठोली करते और उनसे मुक्त रूप से मिलते थे, परन्तु क्षणभर के लिए भी ईश्वर को नहीं बिसारते थे। यही श्रीरामकृष्ण की विलक्षणता थी। भारत में भ्रमण के दौरान विवेकानन्द ने पाया कि जिस भारत की आत्मा ही धर्म हो वह स्वयं श्रीरामकृष्ण जैसा होगा। वह मानो श्रीरामकृष्ण का बिम्ब हो, साफ तौर पर सादा, परन्तु घोर आध्यात्मिक।

कहने का अर्थ यह नहीं है कि भारत ने जीवन के व्यावहारिक पहलू की अनदेखी की है। पहले भारत बहुत समृद्ध रहा। यही कारण था कि अनेक विदेशी इसे लूटने आये। भारत फिर भी हमेशा धर्म से जुड़ा रहा, जबकि वह भौतिक सम्पन्नता की चाहत में भी रहा। अध्यात्म भारत की विशिष्ट पहचान है। भारत का संगीत, कला और दस्तकारी, साहित्य, वस्तुतः सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति अध्यात्म में सराबोर है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति को उसके धर्म से अलग करके नहीं समझा जा सकता।

अपनी पहचान छिपाने के लिए नरेन्द्र ने अनेक नाम धारण किये ताकि वे भारत के अनन्त में समा सके। भ्रमण के दौरान वे उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, मैसूर, केरल, मद्रास और हैदराबाद के अनेक तीर्थस्थानों और ऐतिहासिक महत्त्ववाले नगरों में गये। उन्हें अपनी आँखों के सामने सर्वत्र पुरातन भारत जीवन्त दिखाई पड़ा। वह राजनीतिक, सांस्कृतिक या आध्यात्मिक किसी भी दृष्टि से हो। इस महान् शिक्षा के दौरान भारतीय जनसमुदाय की कुत्सित परेशानियाँ उनके मन में समा गई, जिससे उनकी यह इच्छा प्रबल हो गई कि उनकी परेशानियों के उपशमन के लिए कुछ करना ही होगा। यह पता लगाने के लिए कि भारत को कैसे सँवारा जाय, वे रियासत-रियासत गये। इनमें से खेतड़ी के महाराज अजीत सिंह उनके परम मित्र और उत्साही शिष्य बन गये। अलवर में उन्होंने पतञ्जलि के महाभाष्य का अध्ययन किया। पुणे में वे महान् राजनेता बालगंगाधर तिलक के पास रहे। पहले तो तिलक ने स्वामीजी के साथ चलते ढंग से बात की, परन्तु बाद में वे उनके ज्ञान की गहराई और विचारों की गूढ़ता से प्रभावित हुए और स्वामीजी को अपने साथ रहने को निमन्त्रित किया। बेलगाम में रुकने के बाद वे बेंगलोर और मैसूर गये। मैसूर के महाराज ने उन्हें पश्चिम में जाकर भारत के लिए सहायता प्राप्त करने और वहाँ सनातन धर्म की शिक्षा देने के लिए आर्थिक सहायता देने का आश्वासन दिया। मैसूर से वे त्रिवेन्द्रम और कन्याकुमारी गये।

कन्याकुमारी में राष्ट्र-ध्यान

भारत-भर में भ्रमण करके विवेकानन्द ने पाया कि धर्म ही भारत का धन और शक्ति है। परन्तु उसकी कमजोरियों का क्या ? अपने देश के प्रति प्रेम के बावजूद उन्होंने उसकी गलतियों के प्रति आँखें नहीं मूँदीं। उन्होंने लोगों में गरीबी, शिक्षा का अभाव और स्त्रियों की परेशानियों को देशा। रास्ता क्या है ? भारत का उत्थान कैसे हो ? विवेकानन्द इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में थे।

अब वे अपनी यात्रा के छोर पर पहुँच गये थे। उन्होंने कन्याकुमारी मन्दिर में माँ कुमारी की प्रतिमा के सामने भावविभोर होकर साष्टांग दण्डवत् किया। फिर वे तैरकर दक्षिण सागर तट से कुछ दूर एक चट्टान पर गये और वहाँ रातभर गहन ध्यान में बैठे रहे। ध्यान ईश्वर के प्रति नहीं था अपितु उसी भारतमाता के प्रति था, जो स्वामी विवेकानन्द के लिए भगवती दुर्गा की अवतार थीं। कैसा अनूठा ध्यान ! ऐसा लगा मानो उनके सामने भारतीय इतिहास के पन्ने खुलते चले गये हों। उनके मन की आँखों के सामने अपने भ्रमण के दौरान हुए अनुभवों का विशाल परिदृश्य उपस्थित हो गया। उन्होंने भारत के भूत, वर्तमान और भविष्य पर, उसके पतन के कारणों पर और उसके पुनरुज्जीवन के साधनों पर चिन्तन किया। उन्होंने अपनी अन्तरात्मा में महसूस किया कि वह उस आध्यात्मिक चेतना के नवीनीकरण और पुनःस्थापन से ही उठ सकता है,

जिसने उसे आजतक के इतिहास में धर्म और संस्कृतियों का पालना बना रखा था। तब उन्होंने हिन्द महासागर की इस अन्तिम छोटी-सी चट्टान पर बैठे-बैठे एकाएक पश्चिम में जाने का निर्णय ले लिया, जहाँ से वे विश्वभर में भारत के धर्म और संस्कार को फैलाने का अपने जीवन का लक्ष्य पूरा करने तथा गरीब भारत के लिए सहायता माँग सकें।

इस विनिश्चय को लेकर वे रामेश्वरम् और मदुरै गये। वहाँ से वे मद्रास गये जहाँ आलासिंगा पेरुमल के नेतृत्व में युवाओं का एक दल उनके पहुँचने का आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था। वहाँ उन्होंने शिकागो में होनेवाली धर्म संसद का प्रतिनिधित्व करने के लिए अमेरिका जाने का विचार रखा। युवा शिष्यों ने उनके मार्ग-व्यय के लिए चन्दा जुटाया। परन्तु, स्वामीजी अब भी भगवती माँ की अनुमति की प्रतीक्षा में थे कि वे जायें या नहीं, इसलिए उन्होंने वह धन गरीबों में बाँट देने के लिए कह दिया। ऐसे समय पर स्वामीजी ने सपने में श्रीरामकृष्ण को सागर में से चलकर आते देखा, जिन्होंने उन्हें अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया। इसके साथ ही श्री सारदा देवी की अनुमति और आशीर्वाद से, जो श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक पत्नी थीं, उनकी समस्या हल हो गई। उनके शिष्य फिर से आवश्यक धन-संग्रह में लग गये।

कई बार तो उन्हें बड़ा विश्वास होता था कि धर्म संसद से उन्हें बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ होंगी। एक दिन जब वे अपने एक शिष्य भाई स्वामी तुरीयानन्द के साथ थे, उन्होंने कहा था, ''हरि भाई, मैं अमेरिका जा रहा हूँ। वहाँ जो कुछ घटेगा, उसके बारे में तुम जो कुछ सुनोगे (अर्थात् धर्म संसद की तैयारियाँ) वह सब मेरे कारण (अपने सीने को ठोकते हुए) होगा। सारी तैयारियाँ केवल इसके (मेरे) लिए की जा रही हैं।''

जब उनकी अमेरिका-यात्रा की तैयरियाँ चल रही थीं, तभी खेतड़ी के महाराज का आश्चर्यजनक निमन्त्रण मिला कि वे उनके पुत्र जन्मोत्सव पर पधारें। स्वामीजी अपने इस शिष्य के निमन्त्रण को मना नहीं कर सके। महाराज ने उनका हृदय से स्वागत किया और उनको हरसम्भव सहयोग देने का वचन दिया। महाराजा के सुझाव पर यहाँ से ही स्वामीजी ने 'विवेकानन्द' नाम अपना लिया। अपने वचन के पक्के महाराजा ने अपने निजी सचिव को स्वामीजी की यात्रा की तैयारी में लगाकर मुम्बई से विदा करने के लिए भेजा। उनकी अमेरिका यात्रा 31 मई, 1893 को शुरू हुई।

विश्वमञ्च पर

स्वामीजी ने अमेरिका-यात्रा चीन, जापान, कनाडा होते हुए की और वे जुलाई 1893 के मध्य में शिकागो पहुँचे। कैण्टन में उन्होंने कुछ बौद्ध मठ देखे, जापान में उन्होंने औद्योगिक प्रगति और लोगों की स्वच्छता को देखा, जिसे उन्होंने सराहा।

अन्त में शिकागो में वे पश्चिम के धन–वैभव की चकाचौंध और अनुसन्धान की पैशाची प्रतिभा देखकर एक बालक की तरह अवाक् रह गये। उनके नैराश्य ने उन्हें संकेत दिया कि सितम्बर तक धर्म संसद नहीं हो पायगी और बिना अपने पद के पहचान–पत्र के, उसमें किसी 'डेलीगेट '(अधिकृत प्रतिनिधि) को प्रवेश नहीं दिया जायेगा। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे अपने को विधाता को सौंप कर बोस्टन चले गये जो शिकागो से कम महँगा था। गाड़ी में उनकी भेंट कु. कैथरीन सेनबोर्न से हुई जिन्होंने उन्हें बोस्टन में अपने अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया। उनके माध्यम से वे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. जॉन हैनरी राइट के सम्पर्क में आये, जो उनसे बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने स्वामीजी के संसद में जाने की कठिनाई की बात जानकर कहा था, ''स्वामीजी, आपसे आपके पद के प्रमाण–पत्र माँगना तो सूर्य से उसके चमकने का अधिकार पूछने जैसा है।'' और, उन्होंने संसद के आयोजकों के नाम एक परिचय–पत्र लिखा। उसमें लिखा था,''यह व्यक्ति हमारे समस्त पण्डित प्रोफेसरों से भी बड़ा पण्डित है।'' पत्र लेकर स्वामीजी 9 सितम्बर, 1893 की शाम को शिकागो रवाना हो गये।

दुर्भाग्य ने उनको तब हक्का–बक्का कर दिया जब उन्हें लगा कि उनसे उस समिति का पता खो गया है जो पूर्व से आनेवाले प्रतिनिधियों की अगवानी कर रहा था। रातभर रेलवे के माल यार्ड में पड़े एक बड़े बक्से में विश्राम करने के बाद स्वामीजी प्रातः इस फिराक में निकले कि इस संकट में उनकी कोई सहायता कर सके। परन्तु हबशी, काला कुत्ता आदि अपमानजनक शब्दों के साथ उनके प्रति द्वार बन्द कर दिये जाते। कालों को कोई आसानी से मदद नहीं करता था। निष्फल प्रयासों से थककर चूर होकर सब कुछ ईश्वरेच्छा पर छोड़ वे सड़क के किनारे बैठ गये। अचानक सामने के भव्य भवन में से एक राजसी ठाठवाली महिला निकली, उनके पास आई और स्वामीजी से उनकी कठिनाई पूछी। ये थीं श्रीमती जॉर्ज डब्ल्यू हेल। भविष्य के लिए, जबतक स्वामीजी अमेरिका में रहे, उनका निवास स्वामीजी का स्थायी पता रहा ; क्योंकि हेल परिवार उनका अनुचर भक्त बन गया था।

धर्म संसद 11 सितम्बर, 1893 को शुरू हुई। आर्ट इंस्टीट्यूट का विशाल कक्ष, लगभग 7000 श्रोताओं से खचाखच भरा था जिसमें देश की श्रेष्ठतम संस्कृति का प्रतिनिधित्व था। मंच पर संसार के कोने–कोने से हर संगठित धर्म के प्रतिनिधि उपस्थित थे। स्वामीजी ने कभी इतने विशाल और विशिष्ट जनसमूह को सम्बोधित नहीं किया था। उनको भारी घबराहट महसूस हुई। अपनी बारी आने पर उन्होंने मन–ही –मन वाणी की देवी माँ सरस्वती को नमन किया और अपना भाषण इन शब्दों से आरम्भ किया, ''अमरीकी बहनों और भाइयों'', तत्काल बड़ी संख्या में बैठे श्रोतागणों की करतल–ध्वनि की गड़गड़ाहट लगभग दो मिनट तक होती रही। सात

हज़ार लोग सम्मान में खड़े हो गये, पता नहीं किसके सम्मान में! भारत के 10,000 वर्ष के आध्यात्मिक इतिहास की शक्ति में जो ज्वलन्त ईमानदारी इन साधारण-से शब्दों में थी उनका प्रभाव, स्वामीजी का महान् व्यक्तित्व, उनका प्रदीप्त मुखमण्डल, उनका गेरुआ वेश, ये सब इतने प्रभावशाली रहे कि अगले दिन के समाचार-पत्रों में लिखा था कि वे धर्म संसद की महानतम विभूति हैं। हाथ में कटोरा लिये साधारण-सा साधु उस समय का नायक बन गया था।

धर्म संसद में स्वामीजी के इस पहले भाषण ने उन्हें इतनी ख्याति दिलाई कि शिकागो के महानतम गणमान्य लोगों में से सबने उन्हें अपने-अपने घर आमन्त्रित किया। हर व्यक्ति उनका आतिथेय बनना चाहता था। पहले दिन के सत्र-समापन के बाद स्वामीजी को एक करोड़पति के भवन में ले जाकर उनका राजसी स्वागत किया गया। आतिथेय ने स्वामीजी की सुख-सुविधा में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी , परन्तु स्वामीजी न तो नाम और ख्याति के भूखे थे, न ही उन्हें किसी भौतिक सुविधा की चाह थी। इसलिए इस ठाठ-बाट, शानो-शौकत और अमरीकियों की अनायास प्रशंसा से स्वामीजी को बेचैनी हुई। वे नहीं भूल पाये कि उनके देशवासी कितनी परेशानियों में हैं। उनके हृदय में भारत के प्रति वेदना बनी रही। वे ऐशो-आरामवाले बिस्तरों में सो नहीं पाये। वे रातभर भूमि पर पड़े-पड़े बालक की तरह बिलखते रहे। उन्होंने प्रार्थना की ,''माँ ! जब मेरा देश घोर गरीबी में गहरा डूबा हो, तब ख्याति की चिन्ता किसे है ! हम भारतीय इतने दरिद्र हैं कि हममें से लाखों तो मुट्ठीभर अनाज के अभाव में ही मर जाते हैं जबकि यहाँ के लोग अपने आराम के लिए पैसा पानी की तरह बहाते हैं। भारतीयों का उत्थान कौन करेगा, कौन उन्हें खाने को देगा ? माँ, मुझे बता मैं उनकी सेवा कैसे करूँ।'' भारत के लिए स्वामीजी का ऐसा विदग्ध प्रेम था।

संसद के शेष दिनों में उन्होंने मुख्य सत्र में भाषण दिये और वैज्ञानिक सत्र में भी भाषण दिया था। उनके भाषणों में ''हिन्दुत्व'' पर उनका पत्रवाचन ध्यान देने योग्य था जो 19 सितम्बर को पढ़ा गया। 20 सितम्बर को उनका छोटा-सा सम्बोधन, जिसमें इस आशय का उल्लेख था कि भारतीयों को आवश्यकता भोजन की है, धर्म की नहीं। 27 सितम्बर के ''अन्तिम सत्र का सम्बोधन'' भी बड़ा प्रशंसनीय रहा। वास्तव में उनसे प्रभावित अमरीकियों ने यहाँ तक कहना शुरू कर दिया कि ''ऐसे विद्वान् के राष्ट्र में मिशनरी भेजना तो निरी मूर्खता है। वहाँ से तो हमारे देश में मिशनरी भेजे जाने चाहिए।''

संसद के वैज्ञानिक सत्र के सभापति श्री मरविन-मेरी स्नैल ने लिखा है,''कुछ भी हो, हिन्दुत्व के सबसे बड़े महत्त्वपूर्ण और अनूठे प्रतिनिधि तो स्वामी विवेकानन्द थे

जो वास्तव में निर्विवाद रहे। वे संसद में सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली व्यक्ति रहे... और समस्त अवसरों पर अन्य वक्ताओं की तुलना में उन्हें ही सबसे अधिक उत्साहपूर्वक ग्रहण किया गया चाहे वह ईसाई रहा हो चाहे गैर-ईसाई। वे जहाँ भी गये, लोग उनके पीछे लग गये और उनके एक-एक शब्द के साथ पूरे मन से जुड़ गये... सबसे अधिक कट्टर पुरातनपन्थी ईसाई उनके बारे में कहते थे, ''वास्तव में वह लोगों में एक राजकुमार है। उन्हें भेजने के लिए अमेरिका भारत का आभार व्यक्त करता है और अनुनय करता है कि ऐसी और विभूतियाँ भेजे।''

महाबोधि सोसाइटी के महासचिव एन्.आर.आई श्री धरमपाल भी धर्म संसद में बौद्धमत के प्रतिनिधि थे। संसद समापन के बाद भारत आकर उन्होंने अपने भाषण में कहा था, ''मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि धर्म संसद में उस महान् और भले हिन्दू साधु विवेकानन्द को छोड़कर कोई ऐसा नहीं था जो सबको सबसे अधिक आकर्षित कर सका... हमारे भद्र भ्राता स्वामी विवेकानन्द ने, न केवल हिन्दू दर्शन के शुद्ध सिद्धान्तों से सबको परिचित कराने में महान् और अकूत सेवा की है बल्कि वे अमेरिकी जनता के विज्ञ और सम्भ्रान्त भाग को यह मनवाने में सफल हुए कि भारत ही समस्त सच्चे दर्शन और तत्त्वज्ञान की माँ है और उनकी वेदी है। मैं बताना चाहूँगा कि जब भी प्रचारित किया जाता कि आज स्वामी विवेकानन्द बोलेंगे तो जगह पाने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती थी। शिकागो नगर में सर्वत्र स्वामी विवेकानन्द के चित्र सहित ऐसी तख्तियाँ लगा दी जाती थीं कि वे अमुक-अमुक स्थान पर अमुक-अमुक विषय पर प्रवचन करेंगे। वे जहाँ भी जाते लोगों से घिर जाते और उन्हें उनकी समस्त बातों में बड़ी रुचि हुआ करती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने देश की महान् सेवा की है, जिसका बंगाल को गर्व होना चाहिए। वहाँ जितने भी प्रतिनिधि थे उनमें, उस सभा में, उन्होंने अपना सर्वोत्कृष्ट स्थान बनाया।''

वास्तव में शिकागो की धर्म संसद में स्वामीजी की उपस्थिति भारत के जागरण में, इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना रही। श्री अरविन्द कहते हैं, ''विवेकानन्द का पश्चिम में जाना... विश्व के सामने जीवन्त संकेत था कि भारत जाग उठा है... न केवल जीवित रहने के लिए बल्कि विजयी होने के लिए।''

संसद की समाप्ति के साथ ही स्वामीजी के शान्ति के दिन समाप्त हो गये। हुआ यह कि अमेरिका के लगभग कोने-कोने में उनके खलबली पैदा करने वाले प्रवचन शुरू हो गये। वे उत्साही अमेरिकी शिष्यों का दल गठित करना चाहते थे और उन्होंने निष्ठावान् विद्यार्थियों की निःशुल्क कक्षाएँ लेना शुरू कर दिया। वे पश्चिम में दिसम्बर 1896 तक रहे जो उनकी गहन गतिविधियों से भरा रहा। न्यूयॉर्क में असंख्य प्रवचन करने और कक्षाएँ लेने के बाद उन्होंने वहाँ वेदान्त सोसाइटी स्थापित की। उन्होंने

अपने एक निकट के शिष्य दल को सहस्र द्वीपोद्यान में प्रशिक्षित किया, उन्होंने राजयोग लिखा और इंग्लैण्ड की दो सफल यात्राएँ कीं। वहाँ उन्होंने प्रवचन किये जो आज ज्ञानयोग के रूप में अवस्थित हैं। वहाँ उन्होंने कुछ शिष्य बनाये जिनमें प्रमुख हैं कैप्टेन और श्रीमती सेवियर, सिस्टर निवेदिता और ई. टी. स्टर्डी। इससे पहले, न्यूयॉर्क में जे. जे. गुडविन, एक युवा अँगरेज आशुलिपिक, उनका शिष्य बन चुका था।

स्वामीजी अमेरिका में जाने-माने व्यक्ति बन गये थे। एक बार एक रेलवे स्टेशन पर जब वे गाड़ी से उतर रहे थे, उनका भव्य स्वागत किया जा रहा था, तभी वहाँ एक नीग्रो कुली ने आगे बढ़कर उनसे हाथ मिलाते हुए कहा, ''बधाई ! मुझे बेहद खुशी है कि मेरी जाति के एक व्यक्ति ने इतना बड़ा सम्मान प्राप्त किया है। इस देश के पूरे नीग्रो समुदाय को आप पर गर्व है।'' स्वामीजी ने कुली के साथ खुशी से हाथ मिलाया और नम्रता से कहा, ''भाई धन्यवाद ! धन्यवाद !!'' उन्होंने यह कहने से इनकार कर दिया कि मैं नीग्रो नहीं हूँ। अब दरअसल स्वामीजी के जाने-माने होते हुए भी उनका अपमान और तिरस्कार होने लगा। अमेरिका के दक्षिण राज्यों में उन्हें नीग्रो होने की आशंका में कई होटलों में नहीं जाने दिया गया, परन्तु उन्होंने कभी इसका प्रतिरोध नहीं किया, न ही यह कहा कि मैं नीग्रो नहीं हूँ या मैं तो भारतीय हूँ। एक पश्चिमी शिष्य ने एक बार उनसे कहा कि ऐसी स्थितियों में वे उन्हें क्यों नहीं बताते कि मैं भारत का हूँ। स्वामीजी ने कहा, ''क्या दूसरों के बल पर उठूँ ? मैं इस संसार में इसलिए नहीं आया हूँ।''

उन्होंने पश्चिम में अपना वेदान्त का सन्देश इस रूप में पहुँचाने के लिए कठोर श्रम किया कि वह समस्त धर्मों का आधारभूत और शाश्वत सिद्धान्त है और तबतक उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप अमेरिका में वेदान्त का कार्य स्थापित हो चुका था। लन्दन के कार्य में भी कुछ प्रगति हो गई थी। अब उनकी मातृभूमि उन्हें पुकारने लगी थी और उनका सन्देश पाने को व्यग्र थी।

विजयोल्लासपूर्ण वापसी

पश्चिम में सक्षम लोगों को काम सौंपकर स्वामीजी का मन राहत महसूस कर रहा था। दिसम्बर 1896 में जिस दिन उन्होंने लन्दन छोड़ा उसी दिन से वे पूरी तरह भारत के विषय में विचारमग्न हो गये। उन्होंने श्री व श्रीमती सेवियर से कहा, ''अब मेरे सामने एक ही विचार है और वह है भारत। मुझे केवल भारत-ही-भारत दिखाई देता है।'' वहाँ से चलते समय उनके एक अँगरेज मित्र ने उनसे पूछा था, ''चार साल के इस विलासी, वैभव और शक्तिशाली पश्चिम के अनुभवों के बाद अब आपको अपनी मातृभूमि कैसी लगती है ?'' इनका उत्तर था, ''चलने से पहले मैं भारत को प्यार करता था। वह मिट्टी मेरे लिए अब और पवित्र हो गई है, वही वायु अब अधिक पवित्रता लिये है और वह पावन भू एक तीर्थस्थान हो गया है।''

अमेरिका छोड़ने से पहले स्वामीजी डिट्रोईट में थे। उन्होंने वेदान्त के सत्य से लोगों को आलोकित करने के लिए अपने रोम-रोम पर जोर डाला था। और, अचानक उनका पूरा शरीर भावविभोर होकर झुक ही गया और वे चिल्ला उठे, ''भारत को मुझे सुनना होगा। मैं भारत की नींव हिलाकर रख दूँगा। मैं उसकी शिराओं में विद्युत-संचार कर दूँगा। वह भारत है, मेरा अपना भारत, वही इस सचाई की प्रशंसा कर सकता है कि मैंने यह सब कुछ कितने मुक्तहृदय से किया है, मेरा उसमें रक्त-सिंचन है वेदान्त की आत्मा के रूप में। भारत मुझे विजयोल्लसित हो ग्रहण करेगा।''

उनकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः पूरी हुई।

स्वामीजी के लौटने के समाचार भारत पहुँच चुके थे। देशभर में जगह-जगह लोग बड़े उत्साह से उनके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछाये बैठे थे। अब वे कोई अन्जाने संन्यासी नहीं थे। छोटे-बड़े हर नगर में उनका उचित स्वागत हो, इसके लिए समितियाँ गठित हो गईं थीं। यह किसी सफल व्यक्तिमात्र की स्वदेश वापसी नहीं थी, यह तो भारत की आत्मा की वापसी थी।

अमृत बाजार पत्रिका ने लिखा, ''स्वामी विवेकानन्द एक विजयी वीर की तरह जय-जयकार लेकर स्वदेश लौट रहे हैं। क्या यह इस बात की याद नहीं दिलाता कि भारत भी एक विजेता देश है, परन्तु अपने ढंग का। इस हेतु, उसने शस्त्र, गोला-बारूद या डायनामाइट काम में नहीं लिया।''

पश्चिम में साढ़े तीन वर्ष काम करके और थका देनेवाली लम्बी समुद्री यात्रा के कारण स्वाभाविक था कि स्वामीजी थक जाते। वास्तव में बहुत थक गये थे और उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी। जैसे ही मातृभूमि की माटी ने उनको छुआ तो उन्हें लगा कि नवजीवन संचार हो गया हो। वे अत्यन्त भावविभोर हो उठे थे। बाद में उन्होंने स्वयं अपने एक शिष्य से कहा था कि मैंने जैसे ही भारत-भू पर पग रखा, ऐसा लगा जैसे मुझे नया जीवन मिल गया है।

स्वामीजी के ठहरने का प्रबन्ध रामनद के राजा श्रीभास्कर सेतुपति के महल में किया गया था। बैठक सम्पन्न होने के बाद स्वामीजी को राजा के शाही वाहन में प्रवेश करने को कहा गया। राजा के आदेश पर घोड़े खोल दिये गये। राजा स्वयं अपने लोगों को लेकर, स्वामीजी को, नगर के बीच से होकर उस शाही वाहन पर महल में ले गये।

मद्रास जाते समय मद्रास से कुछ मील दूर एक छोटे-से रेलवे स्टेशन पर एक नाटकीय घटना घटी। उस स्टेशन पर गाड़ी नहीं रुकनी थी, परन्तु भीड़ ने स्टेशन मास्टर से हठ की कि चाहे कुछ मिनट के लिए ही सही, वह झण्डी दिखाकर गाड़ी रोक दे, मगर कोई फल नहीं हुआ। अतः दूर से आती गाड़ी को देख सैंकड़ों लोग गाड़ी

रोकने का पक्का इरादा कर, पटरी पर लेट गये। स्टेशन मास्टर घबरा गया। गाड़ी के गार्ड ने स्थिति को भाँपकर तुरन्त गाड़ी रोकने के आदेश दे दिये। तब लोग उनके सम्मान में खुशी से पागल हो चिल्लाते हुए स्वामीजी की गाड़ी की तरफ लपके। स्वामीजी उनकी भावनाओं से बड़े प्रभावित हुए। वे कुछ पल के लिए अपनी गाड़ी के दरवाजे पर आये और धन्यवाद के तौर पर उन्होंने हाथ हिलाकर भीड़ का अभिवादन किया। लोग शान्त हो गये, उनकी हार्दिक इच्छा पूरी हुई और गाड़ी मद्रास चली गई।

सेना के एक जवान सूरज राव ने लोगों को पटरी पर लेट जाने के लिए उकसाया था। स्वामीजी की उस क्षणिक झलक ने उसे पागल बना दिया था। अब वह स्वामीजी से अधिक समय अलग नहीं रह पा रहा था। उसने वहाँ से लौटने की बजाय पैदल ही मद्रास जाने का निश्चय किया ; क्योंकि उसके पास पैसे नहीं थे। उसने सागर के किनारे-किनारे होकर जाने का छोटा मार्ग पकड़ा, जहाँ मछुआरों की झोपड़ियाँ पंक्तिबद्ध थीं। सन्ध्या होने पर उसे अजीब दृश्य देखने को मिला। गरीब और अनपढ़ मछुआरे खुशी से उछल-कूद रहे थे, मानो कोई त्योहार मना रहे हों। सभी झोंपड़ियों में प्रकाश हो रहा था। बच्चे हँसी-खुशी से नाच-गा रहे थे। सूरज ने उनसे पूछा, ''आज ये तुम कौन-सा त्योहार मना रहे हो ?'' उन्होंने कहा ''अरे, तुम नहीं जानते, जगद्गुरु पधारे हैं।'' सूरज राव सन्न रह गया। उसे समझते देर न लगी कि वह जगद्गुरु कौन हैं, जिसके कारण ये अनपढ़ मछुआरे इतने प्रसन्न हैं। स्वामीजी की स्वदेश-वापसी से देश के सभी वर्ग के लोगों में नवजीवन संचारित हुआ था। वास्तव में धर्म भारत की आत्मा है।

मद्रास नगर जोश-ओ-खरोश से झूम उठा। मद्रास में उन्होंने पाँच सार्वजनिक सभाओं को सम्बोधित किया। हरेक में उन्होंने यही आह्वान किया कि दुर्बलताओं और अन्धविश्वासों को उखाड़ फेंको और नये भारत का निर्माण करो। उन्होंने इस बातपर बल दिया कि ''राष्ट्रीय जीवन के पूरे संगीत का मूल स्वर धर्म है, वह धर्म जो ''समस्त ब्रह्माण्ड को आत्मीय एकता'' के सूत्र में पिरोता है। इस प्रकार की शक्ति मिल जानेपर बाकी सब कुछ अपने आप व्यवस्थित हो जायगा।'' अपनी आलोचनाओं में उन्होंने देशवासियों को पश्चिम की नकल करने, रूढ़ियों का अन्धानुकरण करने, उनके जातिगत वैमनस्यों के लिए तथा ऐसी दूसरी बहुत-सी बातों के लिए फटकार लगाई।

रोमाँ रोलाँ ने स्वामीजी द्वारा मद्रास में दिये गये भाषणों को भारत में दिये गये उनके समस्त भाषणों में श्रेष्ठ माना है। रोलाँ ने स्वामीजी के भारत लौटने का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से इन शब्दों में किया है, ''... विवेकानन्द ने एक बार फिर भारत-भू को दक्षिण से उत्तर तक पार किया, जैसा कि उन्होंने पहले सड़कों पर भिखारी के वेश में किया था। यह भ्रमण उनकी विजयी प्रगति का था जिसमें उनके साथ उन्मत्त लोग थे।

उनके लिए विजयोल्लास से भागना रण में भागने से कम न था। उनका कहना था कि मुझे जो सम्मान मिला है वह मुझे नहीं, मेरे उद्देश्य को मिला है... जिस अस्वस्थ व्यक्ति को उसकी जीवन-शक्ति के लिए शुश्रूषा की आवश्यकता थी उसने परामानव बनकर अपनी ऊर्जा खपाई। रास्ते-भर उसने अपने जोशीले भाषणों की शृंखला के बीज बिखेर दिये थे। ऐसे सुन्दर और ओजस्वी भाषण भारत में कभी नहीं सुने गये होंगे, जिससे उसका चप्पा-चप्पा रोमांचित हो उठा।''

''कोलम्बो के उनके भाषण मर्मस्पर्शी थे. . . रामेश्वरम् की जनता को उनके प्रवचन ईसा मसीह के उपदेश सदृश थे. . . (किन्तु) मद्रास के लिए उन्होंने महानतम प्रयास सँजोकर रख छोड़े थे. . . राम की, शिव की, कृष्ण की भूमि में पुनरुज्जीवन के प्राण फूँकनेवाला शंखनाद था, और उस वीरोचित आत्मा को, उस अमर आत्मा को, रण के लिए निकल पड़ने का आह्वान था। वह एक सेनानायक था जो अपने अभियान की योजना समझा रहा था और समग्र जनता को एकजुट होकर उठ खड़े होने के लिए पुकार रहा था – ''उठ, मेरे भारत, उठ !''

परन्तु, मद्रास में अपने भाषणों के अलावा भी स्वामीजी को बहुत कुछ करना शेष था। उनके व्यक्तित्व से ही असंख्य लोग खिंचे चले आते थे। उनके व्यक्तित्व के नाना पहलुओं पर, वह हर व्यक्ति मोहित था जो उनके पास एक बार आ गया। लोग आश्चर्य में सोचा करते कि यह मनुष्य है, भगवान् है या कोई और ? उन पर सम्मोहित हो जाते थे। स्वामीजी 6 से 14 फरवरी 1897 तक मद्रास में 9 दिन रुके और मद्रास के लोगों के लिए ऐसा कहा जाने लगा था कि उनके लिए ये अपनी तरह के नवरात्र थे।

स्वामीजी मद्रास से जलमार्ग से 20 फरवरी को कोलकाता पहुँचे। उनके पैतृक नगर में उनका भव्य स्वागत हुआ। यहाँ उन्होंने अपने गुरु के प्रति मर्मस्पर्शी श्रद्धाञ्जलि देते हुए कहा, ''यदि मेरी कोई सफलता है, विचारों में, शब्दों में या कृत्य में, यदि मेरे मुख से एक भी ऐसा शब्द निकला है जिससे विश्व में किसी का कुछ भला हुआ है तो वह सब उन्हीं का है, मेरा उसमें कुछ भी नहीं है. . . यदि यह राष्ट्र उठना चाहता है तो यह गाँठ बाँध ले कि उन्हीं के नाम की माला जपनी होगी।''

स्वागतों का, कार्यक्रमों का और मिलने आनेवाले लोगों का, स्वामीजी पर ऐसा भार आ पड़ा था कि 25 फरवरी 1897 के एक पत्र में उन्होंने लिखा था, ''देशभर में आयोजित होनेवाले समारोह और ढोल-नगाड़ों से तथा स्वागत के ढेर सारे दूसरे तरीकों से, जैसा कि लोग कहते और करते हैं, मुझे मरने तक की फुरसत नहीं है : मेरे तो प्राण ही निकले समझो. . . यदि मुझे कुछ आराम नहीं मिला तो कहा नहीं जा सकता कि मैं छः मास का भी मेहमान रहूँगा या नहीं।''

कोलकाता में एक मास रहने के बाद उनके स्वास्थ्य में एकदम भारी गिरावट आ गई और स्वामीजी मार्च 1897 में स्वास्थ्य-लाभ के लिए दार्जिलिंग चले गये। उनके साथ उनके कुछ भ्रातृ शिष्य तथा पश्चिम और मद्रास के शिष्य भी गये। दार्जीलिंग में उन्होंने रामकृष्ण मिशन स्थापित करने की योजना बनाई। अपने साथी शिष्यों से उन्होंने इस विषय पर अनेक बार चर्चाएँ कीं। पर्याप्त स्वस्थ महसूस करने पर वे 28 अप्रैल को दार्जीलिंग से लौटे । दिनांक 1मई, 1897 को उन्होंने देश के समस्त मठवासी और गृहस्थ शिष्यों की एक सभा बुलाई जो उत्तर कोलकाता में बलराम बाबू के निवास पर सम्पन्न हुई। यहाँ उन्होंने रामकृष्ण मिशन एसोसिएशन की विधिवत् स्थापना की।

एक सप्ताह बाद 6 मई, 1897 को अपने डॉक्टरों के परामर्श पर स्वामीजी अल्मोड़ा चले गये। वे विश्राम करके अपना जीर्ण-शीर्ण स्वास्थ्य सुधारना चाहते थे। परन्तु ,वस्तुतः उन्हें लगा कि वे जहाँ भी गये लोगों की भीड़ ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उनके, उत्साही अनुरोधों पर वे अपने चमत्कारपूर्ण प्रवचन करते रहे - वे प्रवचन, जो शक्ति के स्रोत थे, जिनसे मानव-आत्मा चेतन हो उठती थी। जनवरी, 1898 में स्वामीजी आलम बाज़ार मठ में लौट आये। इन आठ महीनों में उन्होंने जो प्रवचन दिये उनमें से अल्मोड़ा, सियालकोट, लाहौर और खेतड़ी के प्रवचन विशेष रूप से शक्तिशाली थे।

''कोलम्बो से अल्मोड़ा'' के स्वामीजी के प्रवचन इतने शक्तिशाली रहे कि उनसे मानव का कायाकल्प हो जाता था, जैसा कि लाहौर विश्व विद्यालय के गणित के प्रोफेसर तीरथराम का हो गया। बाद में वे ''स्वामी रामतीर्थ'' के नाम से देश-विदेश में वेदान्ती साधु के रूप में विख्यात हुए। स्वामीजी के सन्देश अनुप्राणित करनेवाले होते थे। उनका वर्तमान का निदान बिल्कुल सही होता था और जो उपचार बताया जाता, वह प्रभावशाली होता था।

स्वामीजी के विचार

भारत के पतन के कारण

पश्चिम में स्वामीजी की सफलता और भारत लौटने के बाद कोलम्बो से अल्मोड़ा के उनके भाषण झकझोरनेवाले थे, जिनसे भारत आलोड़ित हुआ और उसका खोया सम्मान वापस मिला। स्वामीजी ने भारत को उसकी शक्ति से अवगत कराया और उसीपर उसका भविष्य निर्माण किया। वे देश की कमियाँ बताने में चूकते नहीं थे। उन्होंने पाया कि देश के पतन के कारण ये थे :-

- जनसमूह की उपेक्षा,
- आत्मविश्वास का अभाव,

- द्वेष रूप में व्यक्त होनेवाली काहिली और ओछापन,
- संगठित कार्यशैली का अभाव।

उन्होंने कहा, "हमारे देश में संगठन का नितान्त अभाव है। यही एक कमी, शेष अन्य प्रकार की बुराइयों का मूल है। हम किसी की बात को सामान्यजन का काम बिल्कुल नहीं मान पाते। संगठन की पहली आवश्यकता है आज्ञापालन... हम आलसी हैं, हम काम नहीं कर सकते, हम आपस में जुड़ नहीं पाते, हममें आपस में प्रेमभाव नहीं है, हम बड़े स्वार्थी हैं, घृणा और द्वेष के बिना हम कोई तीन भी एक साथ बैठ नहीं सकते. . . बहुत–सी बातों में हम तोतारटन्त की तरह बोल तो लेते हैं, परन्तु उसे क्रियान्वित नहीं करते। कहना, किन्तु करना नहीं, यह हमारा स्वभाव बन गया है।"

- महिला वर्ग की उपेक्षा। उन्होंने कहा, "हमारा देश अन्य देशों की तुलना में सबसे निर्बल और सबसे पिछडा हुआ है; क्योंकि यहाँ शक्ति का अपमान होता है।"

- मानव बनानेवाली शिक्षा की कमी।

परन्तु भारत के पतन की बातों ने उन्हें इतना अन्धा भी नहीं कर दिया था कि वे उसकी वास्तविक योग्यता भी न देख पाएँ। उन्होंने कहा, "हम भारत के पतन के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं। एक समय था जब मैं भी उसे मानता था, परन्तु आज अनुभव की अनुकूल अवस्थिति पर खडे होकर, रुकावट डालनेवाले पूर्वाग्रहों के आँखों से ओझल हो जाने पर और सबसे बडी बात यह कि दूसरे देशों के वास्तव में बढा–चढ़ाकर प्रस्तुत चित्रों की तडक–भडक, उन देशों के सम्पर्क में आने पर, उतरकर, जो वास्तविकता सामने आई है, उससे हुई ग्लानि को पूरी तरह स्वीकार करते हुए, मैं मानता हूँ कि वह मेरी भूल थी। हे पुण्यभूमि ! तेरा तो कभी पतन हुआ ही नहीं। राजदण्ड तोडकर फेंके गये हैं, शक्ति कन्दुक के पाले बदलते रहे हैं, परन्तु भारत में राजा और राज दरबार से तो कुछ ही लोग प्रभावित होते थे; जबकि ऊपर से नीचे तक विशाल जनसमूह के लिए तो पालन करने का अपना ही अवश्यम्भावी मार्ग होता था। राष्ट्र की जीवनधारा कभी धीमी गति से और अर्द्ध–चेतनावस्था में बही है, तो कभी जाग्रत और सशक्त अवस्था में। मैं बीसियों जाज्वल्यमान् शताब्दियों की अबाध शोभायात्रा के सामने अवाक् खडा होता हूँ जिसकी शृंखला में इधर–उधर कुछ थोडी–सी कमी दिखाई पडती है वह भी अगली बार अधिक चमक लाने के लिए, और वह फिर अपनी राजसी गति से चलती रहती है मेरी भारत माता अपने यशस्वी भवितव्य को पूर्ण करने के लिए, जिसे इस धरा पर या स्वर्गलोक में भी कोई शक्ति रोक नहीं सकती मानव का प्रगटीकरण पशु मानव से मानव मानव से महामानव – महामानव से दिव्य मानव और दिव्य मानव से दिव्यता।"

तो अपनी शक्ति को बढ़ाते रहिए

समाज–सुधारकों के विपरीत उन्होंने केवल अपने दोष ही नहीं गिनाये बल्कि अपनी शक्ति को बढ़ाते रहने के लिए भी कहा। उन्होंने आगाह किया कि हम उस देश के वासी हैं जो विलक्षण है, जिसका इतिहास महान् है और जिसका भविष्य और भी महान् है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि भारत की देन तो विश्वभर के लिए है। हमारी मातृभूमि का विश्व पर अकूत ऋण है। उन्होंने कहा, ''जब मैं अपने इतिहास पर दृष्टिपात करता हूँ तब, मुझे प्रतीत होता है कि विश्वभर में ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है जिसका मानव–मन के उत्थान में इतना योगदान रहा हो। इसलिए मेरे पास अपने देश की निन्दा के लिए कोई शब्द नहीं है। मैं ईसाई मिशनरियों से कहता हूँ, ''आपने बहुत अच्छा किया है, बस कुछ और अच्छा करने का प्रयत्न करो। हम हिन्दू यह मानने के लिए तैयार रहते हैं कि आपका धर्म पुराना है जबकि हमारा धर्म उससे भी हज़ारों साल पुराना है, तब तुम्हारे धर्म के बारे में सोचा भी नहीं गया था।''

''यही बातें विज्ञान के लिए लागू होती हैं। भारत ने तो पुरातन काल में भी सबसे पहले वैज्ञानिक चिकित्सक दिये। सर विलियम हण्टर के अनुसार भारत ने नाना रसायनों की शोध करके और यह सिखाकर कि नाक–कान की गड़बड़ियों को कैसे ठीक किया जा सकता है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी योगदान दिया है। गणित, बीजगणित, रेखागणित, खगोलशास्त्र और आधुनिक विज्ञान मिश्रित गणित की प्रगति में तो और बहुत कुछ किया है। इन सबका आविष्कार भारत में ठीक वैसे ही हुआ जैसे दस अंकों का, जो वर्तमान सभ्यता के समस्त अनुसन्धानों की आधारशिला है। इन अंकों का अन्वेषण भारत में हुआ जो वस्तुतः संस्कृत शब्दावली में है।''

''दर्शन में तो आज भी हम किसी दूसरे देश से कद्दावर हैं,'' जैसा कि महान् जर्मन दार्शनिक शोपेनहोवर ने स्वीकार किया है, संगीत में भारत ने अपना स्वर सिद्धान्त दिया है जिसमें सात मूलभूत स्वर हैं. . . भाषाविज्ञान में हमारी संस्कृत भाषा को आज विश्व स्तर पर समस्त यूरोपीय भाषाओं का आधार स्वीकार किया गया है।''

''साहित्य में हमारे महाकाव्य, हमारे काव्य और नाटक किसी भी दूसरी भाषा में उपलब्ध साहित्य में सानी नहीं रखते, हमारे 'शकुन्तला' रूपक को जर्मनी के महान् कवि गेटे ने इन शब्दों में समेटा– 'स्वर्ग और धरा का मिलन'। ईसप की कथाएँ भारत की देन हैं, जिन्हें ईसप ने एक संस्कृत की पुस्तक से ली है, ऐरेबियन नाइट्स इसी की देन है। यहाँ तक कि सिंड्रेला और बीन स्टॉक्स भी। सामान बनाने में भी भारत ही कपास और केसरिया रंग बनानेवाला पहला देश था। उसे आभूषणों के काम में महारत हासिल थी तथा 'शक्कर' शब्द और वस्तु, ये दोनों ही भारत की देन हैं। शतरंज, ताश और पासे फेंकने के खेल भी भारत के आविष्कार हैं। वास्तव में हर क्षेत्र में भारत इतना

महान् था कि इसके कारण यूरोप के दस्ते भारत की सीमा पर खिंचे चल आये, जिसके फलस्वरूप परोक्ष रूप से अमेरिका की खोज हो गई।''

''और, मेरी यह चुनौती है कि कोई बता सके कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में वह कौन–सा समय रहा जब उसकी आध्यात्मिक विशालता में कमी आई हो और वह विश्व को प्रभावित न कर सका हो। परन्तु उसका काम अध्यात्म का विस्तार रहा है जो युद्ध की तोपों से या जत्थों के कूच से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। विश्व पर उसका प्रभाव उषाकाल की ओस जैसा पड़ा है, जो किसी को सुनाई नहीं पड़ती और जिसकी परवाह मुश्किल से की जाती है, परन्तु उसी से धरा पर श्रेष्ठतम पुष्प खिलते हैं।

धर्म : भारत की आत्मा

उन्होंने कहा था कि धर्म (अध्यात्म) ही भारत की आत्मा है। अतः, उसका पुनरुज्जीवन भी धर्म से ही सम्भव है; क्योंकि ''भारत की जीवन्तता धर्म में है और जबतक हिन्दू जाति अपने पुरखों की इस महान् धरोहर को नहीं भूलती है विश्व की कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो उसे नष्ट कर सके।''

जब तक शरीर का रक्त शुद्ध और सशक्त रहता है, उस शरीर में किसी रोग के कीटाणु नहीं रह सकते। हमारे जीवन का रक्त अध्यात्म है। जबतक यह निर्बाध गति से, सशक्त, शुद्ध तथा जीवन्तता से प्रवाहित होता रहेगा, सबकुछ ठीक–ठाक रहेगा; राजनीतिक, सामाजिक और दूसरे कोई भी बड़े दोष, यहाँतक कि देश की दरिद्रता भी, सब ठीक हो जायेंगे यदि रक्त शुद्ध है।

''हमारी जाति का लक्ष्य कभी राजनीतिक महानता या सैन्य शक्ति नहीं रहा; वह कभी नहीं रहा और. . . कभी नहीं रहेगा।''

''हम यह भी देखते हैं कि भारतीय जाति सम्पदा जुटाने में भी तत्पर नहीं रही। यद्यपि हमने अपार सम्पदा प्राप्त की, इतनी सम्पदा जितनी कोई दूसरा देश नहीं जुटा पाया होगा, तथापि यह देश सम्पदा का पक्षधर नहीं रहा। यह सदियों तक एक सशक्त जाति रही, परन्तु हम देखते हैं कि यह देश कभी सत्ता का हामी (पक्षपाती) नहीं रहा, कभी दूसरे देश को जीतने नहीं गया। अपनी ही सीमाओं में सन्तुष्ट रहा और कभी किसी से युद्ध नहीं किया। भारत को कभी साम्राज्य की भूख नहीं रही। इसलिए इस जाति का आदर्श सत्ता और सम्पदा नहीं रहे।''

''मैंने थोड़ी–सी दुनिया देखी है। पूर्व–पश्चिम की कुछ जातियों में गया हूँ। सर्वत्र मैंने पाया कि हर राष्ट्र का अपना–अपना आदर्श होता है, जो उसकी रीढ़ की हड्डी का काम करता है, उसे उस जाति की रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है। किसी की रीढ़

की हड्डी राजनीति होती है, किसी की सामाजिक संस्कृति, किसी की बौद्धिक संस्कृति इत्यादि। परन्तु, हमारी भारतमाता का आधार, उसकी रीढ़ की हड्डी, केवल धर्म है, धर्म; क्योंकि इसी चट्टान पर इसके सम्पूर्ण जीवन का भवन खड़ा है।''

''भारतीय जीवन शैली की यही कथा है, उसके शाश्वत संगीत की यही धुन है, उसकी रीढ़ की हड्डी यही है, यही उसकी नींव है उसकी अस्मिता का दूसरा कोई कारण नहीं है मानव जाति का अध्यात्मवाद। अपने इस जीवन-मार्ग से वह कभी विचलित नहीं हुआ है, शासन चाहे तारतारों का रहा चाहे तुर्कों का मुग़लों का, चाहे अँगरेजों का।''

पुनरुत्थान का मार्ग

पुनरुत्थान का काम कैसे किया जाय ? इसके लिए स्वामीजी की योजना इस प्रकार है :-

1. विघटनकारी मत बनो

''सर्वप्रथम मैं मानवमात्र से इस उक्ति को मान्यता देने को कहूँगा कि ''नष्ट मत करो।'' विघटनकारी सुधारक संसार का कोई भला नहीं करते। तोड़िए मत, गिराइए मत अपितु कुछ बनाइए, निर्माण कीजिए। हो सके तो सहायता कीजिए, न हो सके तो हाथ जोड़ दीजिए और जो हो रहा है, उसे खड़े होकर देखिए। आप सहायता नहीं कर सकते तो हानि भी मत पहुँचाइए. . . मानव जहाँ है उसे वहीं रहने दीजिए, वहाँ से उसे सहारा दीजिए. . . हम और तुम और क्या कर सकते हैं ? कदापि नहीं। बालक तो स्वयं ही सीखता है।''

2. जनसाधारण का उत्थान कीजिए

''अपने सामने यही ध्येय रखिए जनसाधारण का उत्थान उनके धर्म को हानि पहुँचाये बिना।''

''स्मरण रहे देश झोंपड़ियों में बसता है. . . किसी देश का प्रारब्ध... वहाँ के जनसमूह की दशा...पर निर्भर करता है। क्या आप उनका उत्थान कर सकते हैं ? क्या आप उन्हें, उनके सहज आत्मिक स्वभाव को हानि पहुँचाये बिना उनका खोया व्यक्तित्व लौटा सकते हैं ?''

''भारत के दरिद्र और दलितों के बारे में हम कैसे विचार रखते हैं, इसे सोचकर मुझे कितनी पीड़ा हुई है! उनके लिए उठने का, उस स्थिति से बच निकलने का कोई अवसर ही शेष नहीं रह गया है। भारत के दरिद्रों, दलितों और पातकियों के कोई मित्र नहीं, कोई सहायक नहीं. . . वे दिन-दिन गहरे डूबते ही जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों से विवेकीजन इस स्थिति को देखता आ रहा है, किन्तु दुर्भाग्य से उन्होंने उसे हिन्दू धर्म

के द्वार पर ला पटका है और उनके लिए विश्व के इस महानतम धर्म को कुचलना ही सुधार का मार्ग बच रहा है। मित्रों! सुनो, ईश्वर की कृपा से मैंने इस रहस्य को पा लिया है। धर्म में कोई दोष नहीं है। दूसरी ओर स्वयं आपका धर्म आपको यह बताता है कि हर व्यक्ति नाना रूपों में आपका ही प्रतिरूप है।''

''मेरा दावा है कि भारतीय समाज को सुधारने के लिए धर्म को विकृत करने की आवश्यकता नहीं है तथा समाज के विद्यमान् स्वरूप का कारण धर्म नहीं है बल्कि धर्म को समाज पर लागू न किया जाना है, जो किया जाना चाहिए था। अपने पुराने ग्रन्थों के आधार पर मैं इसे अक्षरशः सिद्ध करने के लिए तैयार हूँ। यही मेरा आपसे कहना है और हमें इसी को क्रियान्वित करने के लिए जीवनभर संघर्ष करना होगा।''

3. अपने भूतकाल को जानिए

भूतकाल को जानने से ही वर्तमान बनता है। इसलिए जितना हो सके मुड़कर देखो, पीछे छूट गये शाश्वत झरनों का जल पीओ। इसके बाद आगे देखो, आगे बढ़ो और सदैव भारत को प्रकाशमान् एवं महान् बनाओ और इतना ऊँचा ले जाओ, जितना वह कभी रहा भी न होगा। हमें अपनी अस्तित्वता के तत्त्वों को पहचानना होगा, अपनी शिराओं में बहते रक्त को जानना होगा. . . हमें भारत को उससे भी महान् बनाना होगा जितना महान् वह कभी रहा भी न हो।

''आजकल हरेक उसे लांछित करता है जो लगातार अपने भूतकाल को देखता रहता है। कहा गया है कि भूतकाल को इस तरह मुड़कर देखते रहना भी भारत की व्यथा का कारण है। मुझे तो लगता है कि विपरीत स्थिति ही सही है। जबतक हम भूतकाल को भुलाये रहे, हिन्दू राष्ट्र व्यामोह में रहा; जैसे ही हमने अपना भूतकाल देखना शुरू किया चारों ओर जीवन की ताजा अभिव्यक्ति फैल गई। इसी भूतकाल के साँचे में दबकर भविष्य निकलेगा, यही भूत, भविष्य बन जायगा।''

''इसलिए हिन्दू अपने भूतकाल का जितना अध्ययन करेंगे उतना ही उज्ज्वल उनका भविष्य होगा तथा जो भी भूतकाल को घर-घर पहुँचायेगा, वही अपने राष्ट्र का महान् हितैषी होगा। भारत के पतन का कारण यह नहीं था कि उसके प्राचीन रीति-रिवाज बुरे थे, अपितु कारण यह था कि उन्हें अपने वैधानिक निष्कर्षों तक नहीं पहुँचने दिया गया।''

4. देश की विभूतियों का सम्मान

''हमें महान् सन्तों की पूजा प्रारम्भ करनी होगी। उन महान् आत्माओं की पूजा जिन्हें शाश्वत सत्य का एहसास हुआ, उन्हें, लोगों के सामने उन आदर्शों के रूप में प्रस्तुत करना होगा जो उनके लिए अनुकरणीय आदर्श हैं; जैसे भारत के विषय में

श्रीराम, श्रीकृष्ण, महावीर और श्रीरामकृष्ण इत्यादि। क्या आप इस देश में श्रीराम और महावीर की पूजा करवा सकते हैं ?. . . श्रीकृष्ण की पूजा, उनकी गीता के स्वरों की गर्जना का प्रसार दूर-दूर कर दो, एक सिंह की गर्जना की तरह. . . हमें अब अधिकांशतः वीर भाव की आवश्यकता है जिसमें एड़ी से चोटी तक शिराओं में भरपूर राजसी चेतना का स्पन्दन हो ऐसा वीर जो सत्य को जानने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दे ऐसा वीर जिसके लिए 'त्याग' कवच हो और 'बुद्धिमत्ता' खड्‌ग ।''

5. शिक्षा : मूलभूत आवश्यकता

''शिक्षा, शिक्षा और शिक्षा ! यूरोप के अनेक नगरों की यात्रा के दौरान मैंने गरीबों तक की सुख-सुविधाओं को और उनकी शिक्षा को देखा जिसके सामने मेरे मन में अपने गरीब लोगों की तस्वीर उतर आई, और मेरी आँखों से आँसू बह निकले। इतना अन्तर क्यों ? मुझे इस प्रश्न का उत्तर मिला ,''शिक्षा''। शिक्षा से आत्मविश्वास पैदा होता है, आत्मविश्वास से अन्तर में बैठा ब्रह्म जागता है, जबकि हमारा ब्रह्म शनैः-शनैः शान्त होता जा रहा है।''

''शिक्षा जानकारी का कोई ऐसा भण्डार नहीं है जो आपके मस्तिष्क में भर दिया जाता है और जो आपके अन्दर जीवनभर उथल-पुथल करता रहता है। हमारे लिए वह जीवन बनानेवाली, मानव बनानेवाली, चरित्र बनानेवाली, विचारों को पचानेवाली होनी आवश्यक है। आपने पाँच बातें भी गुण ली हैं और उन्हें अपने जीवन-चरित्र में उतार ली हैं तो आप उस किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं, जिसने पूरा पुस्तकालय रट लिया हो।''

''तात्पर्य यह है कि हमारे लिए देश में स्वस्थ शिक्षण हो, आध्यात्मिक और सर्वधर्म-समभाववाला शिक्षण। उसका स्वरूप राष्ट्रीय हो तथा राष्ट्रीय प्रणाली के ज़रिये यथासम्भव व्यावहारिक भी हो।''

6. युवा वर्ग आगे आये

''मेरा विश्वास नई पीढ़ी में है, आधुनिक पीढ़ी में है, कार्यकर्ता उन्हीं में मिलेंगे। वे सिंहों की तरह समस्त समस्याओं का हल निकाल लेंगे।''

इस काम को करने के लिए आनेवाले युवाओं के निमित्त उन्होंने तीन आवश्यकताएँ निर्धारित की :

- अन्तरात्मा में बोध हो,
- उपचार का ज्ञान हो,
- लक्ष्य शुद्ध और अदम्य हों।

शिष्यों का प्रशिक्षण

कोलकाता में जब मई, 1898 में प्लेग फैला तब आश्रम के सदस्यों और साधारण शिष्यों के सहयोग से उन्होंने सहायता कार्य आयोजित किये। प्लेग नियन्त्रित हो जाने पर स्वामीजी अपने विशेष शिष्यों को लेकर नैनीताल और अल्मोड़ा रवाना हो गये। उनके लिए यह समय अपने पश्चिमी शिष्यों की बड़ी तैयारी और प्रशिक्षण का था, विशेष रूप से भगिनी निवेदिता के लिए। दिनाङ्क 16 जून को स्वामीजी इनमें से कुछ शिष्यों को लेकर कश्मीर रवाना हो गये। कश्मीर की यह यात्रा स्वामीजी और शिष्यगण, दोनों के लिए चिरस्मरणीय और अनुभवी रही। जुलाई के अन्त में स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता के साथ पवित्र तीर्थ अमरनाथ की यात्रा की। हर छोटे रीति-रिवाज का पालन करते हुए स्वामीजी 2 अगस्त को अधोवस्त्र धारण किये हुए और शरीर पर भभूत लगाए हुए अमरनाथ गुफा में पहुँचे। भावोद्रेक से उनका सारा शरीर कम्पायमान् था उन्हें एक महान् रहस्यपूर्ण अनुभव हुआ था जिसकी चर्चा में उन्होंने अपना मुख कभी नहीं खोला। कहना न होगा कि स्वयं शिवजी ने उन्हें दर्शन दिये थे। इसके बाद वे माँ भगवती के मन्दिर क्षीर भवानी गये जो श्रीनगर से कुछ दूर है। स्वामीजी के लिए यह एक और स्मरणीय अनुभव था। माँ भवानी उनपर सवार थीं। स्वयं उनकी कविता से उद्धरण दिया जाय तो : "यह सब सच है, अक्षरशः सच, मैंने इसे सिद्ध किया है; क्योंकि मैंने मृत्यु की आकृति का आलिंगन किया है।"

दिनांक 28 अक्तूबर को कोलकाता पहुँचकर वे नाना गतिविधियों में लग गये। कोलकाता से पाँच मील दूर, गंगा के पश्चिमी तट पर बेलूड़ में भूखण्ड लिया गया और मठ का काम शुरू किया गया। अब बेलूड़ मठ के नाम से प्रसिद्ध इस नये मठ में जनवरी 1899 से भिक्षु आने लगे। इससे पहले "द निवेदिता गर्ल्स स्कूल" का उद्घाटन हो चुका था। इसी समय बँगला मासिक प्रकाशन "उद्‌बोधन" भी शुरू हो चुका था और सेवियर्स दम्पत्ति ने भी मार्च 1899 में मायावती, अल्मोड़ा (वर्तमान जिला चम्पावत-उत्तराखण्ड) में 'अद्वैत आश्रम' खोलकर हिमालय की तराई में एक विहार स्थापित करने का स्वामीजी का सपना साकार कर दिया था। अँगरेजी मासिक "प्रबुद्ध भारत" जो पहले मद्रास में शुरू किया गया था, उसे भी मायावती स्थित अद्वैत आश्रम में 1899 में ले आया गया था।

इस दौरान स्वामीजी मठ के संन्यासियों और ब्रह्मचारियों को निरन्तर घोर आध्यात्मिक और सेवाभावी जीवन जीने के लिए प्रेरित करते रहे, ताकि स्वयं को मोक्ष मिले और साथियों का भला हो। "आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च", यह उनका कहना था।

एक बार फिर विश्व-भ्रमण

स्वास्थ्य में सुधार की आशा से उनके साथी भिक्षुओं ने उनके फिर से पश्चिम

जाने की योजना का स्वागत किया। अतः, स्वामी विवेकानन्द स्वामी तुरीयानन्द और भगिनी निवेदिता को साथ लेकर 20 जून, 1899 को भारत से चले गये। स्वामीजी की यह यात्रा दोनों के लिए बड़ी शिक्षाप्रद रही। भगिनी निवेदिता ने लिखा, ''आदि से अन्ततक जीवन्त कथाओं की धारा निरन्तर बनी रही। यह कोई नहीं जान पाया कि किस क्षण अन्तर्ज्ञान प्रकाशित हो जायगा और किस नये सत्य का नाद गूँज उठेगा।''

यूरोप की इस दूसरी यात्रा के दौरान उनमें यह धारणा प्रबल हो गई कि पूर्व और पश्चिम को एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए तथा अधिक शक्तिशाली बनने में आपस में सहयोग करना चाहिए। वे पश्चिम की मात्र सांसारिक चकाचौंध से प्रभावित नहीं हो पाये और न ही भारत के मात्र अध्यात्म पर दिये जानेवाले बल से उसकी सामाजिक और आर्थिक कमियाँ छुप सकीं।

उन्होंने निवेदिता से कहा, ''पश्चिम का सामाजिक जीवन मात्र एक ठहाका है, जिसके नीचे बिलखना दबा है। उसका अन्त सुबकियों में होता है. . . यहाँ भारत में, ऊपर-ऊपर सब मायूसी है, परन्तु अन्तर में उन्मुक्तता और आमोद-प्रमोद छुपे हैं।''

यात्रा का अन्त

वे दिसम्बर, 1900 को यकायक भारत लौट आये; क्योंकि उन्हें कैप्टेन सेवियर की मृत्यु का आभास हो गया था। मठ में स्वामी विवेकानन्द को कैप्टेन सेवियर का देहावसान सुनने को मिला, इसलिए वे तत्काल श्रीमती सेवियर को सान्त्वना देने के लिए मायावती रवाना हो गये। दिनांक 3 जनवरी, 1901 को वे वहाँ पहुँचकर एक पखवाड़ा रुके। हिमालय की गोद में बसे इस आश्रम की प्राकृतिक छटा से वे बड़े आनन्दित हुए, जो अद्वैत को समर्पित था। अपनी अस्वस्थता और कड़ाके की सर्दी के बावजूद वे वनों में और कृत्रिम झील के किनारे उन्मुक्त भाव से घूमा करते थे।

बेलूड़ लौटकर वे वहाँ सात सप्ताह तक रुके और फिर पश्चिम बंगाल और असम चले गये। उनकी माताजी भी उनके साथ गईं उन्होंने तीर्थ करने की हार्दिक इच्छा की थी। उन्होंने श्रीमती बुल को लिखा था, ''किसी हिन्दू विधवा की यही प्रबल इच्छा हुआ करती है। मैं अपनों के लिए मुसीबत का कारण हूँ। मैं उनकी यही एक इच्छा पूरी करने का प्रयास कर रहा हूँ।'' वे अपनी यात्रा के दौरान नांगल बाँध, कामाख्या और शिलांग होते हुए मठ में मई, 1901 के दूसरे सप्ताह में लौटे। इस दौरान उन्होंने ढाका और शिलांग में कुछ प्रवचन किये।

अब उन्होंने आश्रम में शान्त और सादा जीवन जीना शुरू कर दिया था। वे कभी मठ के मैदान में घूमते दिखाई पड़ते, कभी केवल अपने अधोवस्त्र में होते अथवा वे रसोई

में काम करते हुए लोगों को आश्चर्यचकित करते– तो कभी संन्यासियों के साथ बैठकर भक्ति–गीत गाते। उन्हें आगन्तुको को आध्यात्मिक ज्ञान देते हुए देखा जा सकता था या फिर वे अपने कक्ष में गहन अध्ययन में लगे होते या मठवासियो को धर्मग्रन्थों के कठिन अंशों को समझाते मिलते और उनके सामने भावी कार्य–योजनाएँ रखते होते। उन्होंने अपने साथी शिष्यों के नाम एक न्यास प्रलेख निष्पादित करके अपने आपको तमाम औपचारिक दायित्वों से मुक्त कर लिया था, जिसमें उन्होंने बेलूड़ मठ सहित, जो अबतक उनके पास था, समस्त सम्पत्तियाँ उनके नाम कर दी थीं।

सन् 1901 के समाप्त होते–होते, दो विद्वान् बौद्ध उन्हें जापान में होनेवाले आगामी धर्म–सम्मेलन में भाग लेने के लिए वहाँ से निमन्त्रण देने आये थे। स्वामीजी उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सके बल्कि उनके साथ बोधगया और वाराणसी चले गये। वाराणसी में जब उन्होंने देखा कि उनके सन्देश से प्रेरित होकर कुछ युवाओं ने गरीबों और ज़रूरतमन्दों की सेवा करना शुरू कर दिया है, तब उनका आनन्दित होना स्वाभाविक था। उनके इस कार्य से 'रामकृष्ण मिशन होम ऑफ सर्विस' के भविष्य का केन्द्र तैयार हो गया था।

स्वामीजी जानते थे कि उनका अन्त निकट है। अपने अन्तिम दिनों के उनके सारे क्रियाकलाप सोचे–समझे और अर्थपूर्ण हुआ करते थे। उनका कहना था कि विशाल वृक्ष तले छोटे पादप नहीं पनप सकते। दिनांक 4 जुलाई, 1902 को वे यों ही प्रातः 8 से 11 बजे तक ध्यान में बैठ गये। दोपहर में वे स्वामी परमानन्द के साथ घूमने निकल गये और उन्हें एक वैदिक विद्यालय खोलने की योजना बताई। फिर कुछ युवा लाभार्थियों को संस्कृत पढ़ाई। सन्ध्या समय वे अपने कक्ष में चले गये जहाँ उन्होंने एक घण्टा ध्यान किया। फिर वे शान्त लेट गये। तत्पश्चात् दो दीर्घ श्वास छोड़ते हुए अनन्त में विलीन हो गये।

उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया था, परन्तु 1896 में श्री एरिक हैमण्ड को लन्दन में कहे गये ये शब्द हरेक के स्मृतिपटल पर अमरत्व के प्रति शेष रह गये : "हो सकता है इसी में भला समझूँ कि मैं अपने फटे हुए वस्त्र की तरह शरीर को उतार फेंकूँ और इस प्रकार शरीर छोड़ दूँ। परन्तु, मेरा काम नहीं रुकेगा। मैं सर्वत्र लोगों को तब तक प्रेरित करता रहूँगा जब तक विश्व यह न जान ले कि उसका ईश्वर से एकाकार हो गया है।" यह अक्षरशः सत्य हुआ। स्वतन्त्रता आन्दोलन रहा हो अथवा बाद के समस्त राष्ट्र–निर्माण के प्रयास, सभी ने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा ली।

स्वामीजी का भारत–प्रेम

स्वामीजी ने भारतवासियों को अपने देश से प्रेम करना, उसे आदर देना और उसके लिए काम करना सिखाया। उन्हें पूरा विश्वास था कि विश्व को पश्चिमी भौतिकता

की अपेक्षा भारतीय आध्यात्मिक निधि की कहीं अधिक आवश्यकता है और उनका यह दृढ़ विश्वास पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक और तड़क-भड़क से कभी नहीं डगमगाया, न ही इस कारण उनमें कभी क्षणभर को भी हीन भावना आ पाई। अपने इस अटल विश्वास के कारण ही वे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के वैभव का उद्घोष कर सके थे। निस्सन्देह उनके इस साहस और विश्वास से पश्चिम के सहस्त्रों लोगों में भारत और उसकी सभ्यता के प्रति प्रेम जागृत हो गया था।

स्वामीजी भारत और उसकी जनता के लिए प्रेम की मूर्ति थे। जो भी उनके सम्पर्क में आया उन्होंने उसमें भारत के प्रति प्रेम जागृत कर दिया।भगिनी क्रिस्टीन लिखती हैं : ''मैं सोचती हूँ हममें भारत के प्रति प्रेम का जन्म उसी समय हो गया था, जब उनकी चमत्कारपूर्ण वाणी से 'भारत' शब्द हमने पहली बार सुना। विश्वास नहीं होता कि तीन अक्षर के इस छोटे-से शब्द में इतना चमत्कार हो सकता है। उसमें प्रेम, उद्वेग, गर्व, अभिलाषा, शृंगार, त्रासदी, वीरता और पुनश्च प्रेम था। समस्त ग्रन्थ भी लोगों में ऐसे भाव नहीं जगा सकते थे। जिन्होंने भी उस शब्द को सुना, उनपर प्रेम का जादू चल गया। बाद के लिए भी भारत-भूमि उनके दिलों की कामना बनकर रह गई। उससे सम्बद्ध सब कुछ सुरुचिपूर्ण हो गया   जीवन का अंग बन गया   वहाँ के लोग, उसका इतिहास, वास्तुकला, उसके रीति-रिवाज, सरिताएँ, पर्वत, मैदान, उसकी संस्कृति, उसकी महान् आध्यात्मिक मान्यताएँ, उसके धर्मग्रन्थ।''

उन्होंने जोर देकर कहा था, ''यदि इस धरा पर कोई भू-भाग है जिसे पुण्यभूमि होने का वरदान प्राप्त है, वह भूमि जहाँ आत्माओं को अपने कर्मों का लेखा चुकाने आना ही होता है, वह भूमि जहाँ हर उस आत्मा को अपना अन्तिम पड़ाव पाने के लिए यहाँ आना ही होता है जो ईश्वरत्व की ओर बढ़ रही होती है, वह भूमि जहाँ मानव की विनम्रता, उदारता, शुद्धता और शान्ति अपनी चरम सीमा तक पहुँची, यहाँ तक कि वह भूमि जो आत्म-निरीक्षण और आध्यात्मिकता की है, तो वह है भारत।''

भारत के प्रति इसी प्रेम ने उसका फिर से कायाकल्प किया है।

आओ! हम उनका अनुगमन करें, इस वैभवपूर्ण भारत-भूमि का फिर से कायाकल्प करने का काम करें।

हम सबको मिलकर समस्त राष्ट्रीय शक्तियों को समेकित करना है, जैसा कि स्वामीजी ने कहा है :

''भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों को एक होना होगा। भारत को वही संगठन एक राष्ट्र बना सकेगा जिसके हृदय की धड़कनों में वही एक आध्यात्मिक राग हो।''

आओ ! हम एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था तैयार करें।

इसकी प्राप्ति के लिए आओ एक शक्तिशाली संगठन बनायें।

उस महान् देशभक्त सन्त के सपने साकार करने के लिए, जो इस प्राचीन देश का फिर से कायाकल्प करने के लिए युवाओं का मुँह जोहता था, आओ समस्त शक्तियाँ एक हो जायँ।

"लाखों युवा स्त्री-पुरुष जिनमें पवित्रता की आग है, ईश्वर के प्रति चिर श्रद्धा का दुर्ग है, जिनमें गरीबों और दलितों के प्रति सहानुभूति का सिंह जैसा साहस है, वे भारत-भूमि के कोने-कोने तक पहुँचकर मुक्ति का सन्देश, सहायता का सन्देश, सामाजिक उत्थान का सन्देश देंगे - समानता का सन्देश" यही उन्होंने कहा था-

उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्यवराम्निबोधत !!!

एक आदर्श की आवश्यकता

आदर्श हमसे बहुत दूर हैं और हम उनसे बहुत नीचे पड़े हुए हैं, तथापि हम जानते हैं कि हमें एक आदर्श अपने सामने रखना आवश्यक है। इतना ही नहीं, हमें सर्वोच्च आदर्श रखना आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति इस जगत् में बिना किसी आदर्श के ही जीवन के इस अन्धकारमय पथ पर भटकते फिरते हैं। जिसका एक निर्दिष्ट आदर्श है, वह यदि एक हज़ार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं है, वह पचास हज़ार भूलें करेगा। अतएव एक आदर्श रखना अच्छा है। इस आदर्श के सम्बन्ध में जितना हो सके, सुनना होगा; तब तक सुनना होगा, जब तक वह हमारे अन्तर में प्रवेश नहीं कर जाता, हमारे मस्तिष्क में पैठ नहीं जाता, जब तक वह हमारे रक्त में प्रवेश कर उसकी एक-एक बूँद में घुल-मिल नहीं जाता, जब तक वह हमारे शरीर के अणु-परमाणु में व्याप्त नहीं हो जाता। - स्वामी विवेकानन्द

पुण्यभूमि भारत

यदि इस पृथ्वीतल पर कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है; ऐसा देश, जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना ही है; ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पहुँचना अनिवार्य है; ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शान्ति का चरम शिखर स्पर्श किया हो तथा इस सबसे आगे बढकर जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो,तो वह देश भारत ही है।

अतीत गाथा

भारत का प्राचीन इतिहास अलौकिक उद्यम एवं उसके बहुविध प्रदर्शन, असीम उत्साह, विभिन्न शक्तियों की अप्रतिहत क्रिया और प्रतिक्रिया के समन्वय तथा इन सबसे परे एक देवतुल्य जाति के गम्भीर चिन्तन की अपूर्व गाथा है। यदि 'इतिहास' शब्द का अर्थ केवल राजे–रजवाडों की कथाओं से ही लिया जाय, यदि केवल समाज–जीवन के उस चित्रण को ही इतिहास माना जाय जिसमें समय–समय पर होनेवाले शासकों की कलुषित वासनाओं, उद्दण्डता और लोभवृत्ति का नग्न ताण्डव देख पड़ता हो अथवा उन शासकों के अच्छे–बुरे कृत्यों तथा तत्कालीन समाज पर परिणाम के विवेचन को ही 'इतिहास' की संज्ञा दी जाय, तो शायद भारत में ऐसा कोई इतिहास–ग्रन्थ नहीं मिलेगा। किन्तु, भारत के विशाल धार्मिक साहित्य, काव्य–सिन्धु, दर्शन ग्रन्थों एवं विभिन्न शास्त्रों की प्रत्येक पंक्ति हमारे समक्ष–विशिष्ट राजाओं की वंशावलियों एवं जीवन चरित्रों की अपेक्षा सहस्र गुना अधिक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती है, प्रगति के उस महाभियान के प्रत्येक चरण का, जब सभ्यता के विहान से बहुत पूर्व एक विशाल मानव समूह ने भूख–प्यास से परिचालित, लोभ–मोह से प्रेरित, सौन्दर्यतृष्णा से आकर्षित होकर अनेक भावों से गुजरकर अपनी महान् और अपराजेय बुद्धिबल के सहारे अनेक मार्गों और उपायों का आविष्कार कर पूर्णता की परमावस्था को प्राप्त कर लिया था। यद्यपि विपरीत परिस्थितियों के भीषण झंझावतों ने प्रकृति के विरुद्ध उनके युग–युगों तक संघर्ष के परिमाणस्वरूप एकत्र हुई असंख्य जय–पताकाओं को जीर्ण–शीर्ण कर डाला और काल के थपेडों ने उन्हें जर्जर कर डाला, तथापि आज भी भारत के अतीत की गौरव–गाथाएँ गाई जा रही हैं।

आध्यात्मिकता का आदिस्रोत

यही वह पुरातन भूमि है जहाँ ज्ञान ने अन्य देशों में जाने के पूर्व अपनी आवास भूमि बनाई थी–यही वह भारतवर्ष है, जिसके आध्यात्मिक प्रवाह के भौतिक प्रतीक ये समुद्राकार नद हैं और चिरन्तन हिमालय एक तह पर दूसरी तह चढाकर अपने हिममण्डित

शिखरों द्वारा मानो स्वर्ग के रहस्यों में ही झाँक रहा है। यह वही भारतवर्ष है जिसकी धरा को महानतम ऋषियों की चरण–रज पवित्र कर चुकी है।

सर्वप्रथम मानव, प्रकृति एवं अन्तर्जगत् के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर यहीं उगे थे। आत्मा की अमरता, एक परमपिता परमेश्वर की सत्ता, प्रकृति और मनुष्य के भीतर ओतप्रोत एक परमात्मा के सिद्धान्त भी सर्वप्रथम यहीं उठे और यहीं धर्म तथा दर्शन के उच्चतम सिद्धान्तों ने अपने चरमशिखर स्पर्श किये। इसी भूमि से अध्यात्म एवं दर्शन की लहर पर लहर बार–बार उमड़ी और समस्त संसार पर छा गई।

देवत्व प्राप्ति के लिए संघर्ष

क्या अद्भुत देश है यह! इस पुण्यभूमि पर चाहे जो खड़ा हो– वह इसी भूमि का पुत्र हो अथवा विदेशी– यदि उसकी आत्मा दुर्दान्तपशुओं के स्तर तक नहीं गिर चुकी है तो– वह स्वयं को पृथ्वी के इन श्रेष्ठतम एवं शुद्धतम पुत्रों के तेजोमय विचारों से घिरा हुआ अनुभव करेगा, जो शताब्दियों तक पशु को देवत्व के शिखर तक उठाने के लिए कार्य करते रहे हैं और जिनका प्रारम्भ खोजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायुमण्डल ही आध्यात्मिकता की तंरगों से ओतप्रोत है।

यह देश दर्शन, आध्यात्मिकता, नीतिशास्त्र एवं उन सबका पुण्यधाम है, जो मनुष्य को पशुत्व के विरुद्ध उसके सतत संघर्ष में विश्रामस्थल प्रदान करते हैं। यह देश ही वह साधना–भूमि है जिसके द्वारा मनुष्य अपने 'कर्त्ता' के आवरण को फेंककर अजर–अमर, आदि–अन्त –रहित आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। यही देश है जहाँ सुखों का प्याला भरा रहा और उससे भी अधिक भरा रहा दुःखों का प्याला– किन्तु तभी तक, जब तक मानव को यह पता न चला कि यह सब मिथ्या है, माया है। यहीं सबसे पहले यौवन के पूर्ण विकास में, पर भोग–विलासों की गोद में, शक्ति और यश के चरम शिखर पर आसीन मनुष्य ने माया की जंजीरों को तोड़ डाला।

यहीं मानवता के समुद्र में आनन्द और पीड़ा, सामर्थ्य और दौर्बल्य, वैभव और दारिद्र्य, सुख और दुःख, हास्य और रुदन, जीवन और मृत्यु की शक्तिशाली लहरों के घात–प्रतिघात के आलोडन के बीच दिव्य शान्ति और शाश्वत निस्तब्धता की तीव्र आकांक्षा में से वैराग्य का सिंहासन प्रगट हुआ।

यहाँ इसी देश में सर्वप्रथम 'जन्म–मरण की कठिन समस्या, जीवन की तृष्णा और उसे बनाये रखने के लिए वृथा घोर संघर्ष, जिनका परिणाम केवल दुःखों के सञ्चय में हुआ' इन सब समस्याओं का सामना किया गया और उन्हें हल किया गया। उनको इस तरह हल कर दिया गया मानो वे कभी पहले थी ही नहीं और आगे कभी रहेंगी भी नहीं। यहाँ और केवल यहाँ ही यह खोज हुई कि जीवन स्वयं भी एक अभिशाप है और किसी ऐसी सत्ता की प्रतिच्छाया मात्र है, जो एकमेव सत्य है।

यही वह देश है जहाँ धर्म को व्यावहारिक एवं सच्चा रूप प्राप्त हुआ और केवल यहीं स्त्री तथा पुरुष, धर्म के अन्तिम लक्ष्य का साक्षात्कार करने के लिए साहसपूर्वक कूद पड़े। बिल्कुल उसी प्रकार, जिस प्रकार अन्य देशों में लोग जीवन के सुखों को लूटने के लिए पागल होकर कूद पड़ते हैं और अपने कमजोर बन्धुओं को लूट लेते हैं।

यहीं और केवल यहीं मानव अन्तःकरण का विस्तार इतना अधिक हुआ कि उसमें न केवल सम्पूर्ण मानव जाति समा गई अपितु पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी स्थान मिल गया। उच्चतम देवताओं से लेकर रेत के कणों तक, महानतम से निम्नतम तक, सब कोई उस विशाल अनन्त मानव अन्तःकरण में स्थान पा गए और केवल यहीं मानव-आत्मा ने सकल ब्रह्माण्ड को एक अविच्छिन्न, अखण्ड इकाई के रूप में देखा और उसकी प्रत्येक धड़कन को अपनी धडकन जाना।

सौम्य हिन्दू

सम्पूर्ण विश्व पर हमारी मातृभूमि का महान् ऋण है। एक-एक देश को लें तो भी इस पृथ्वी पर दूसरी कोई जाति नहीं है, जिसका विश्व पर इतना ऋण है जितना कि इस सहिष्णु एवं सौम्य हिन्दू का ! 'निरीह हिन्दू'- कभी-कभी ये शब्द तिरस्कार स्वरूप प्रयुक्त होते हैं, किन्तु यदि कभी किसी तिरस्कारयुक्त शब्द प्रयोग में भी कुछ सत्यांश रहना सम्भव हो तो वह इसी शब्द प्रयोग में है। यह 'निरीह हिन्दू' सदैव ही जगत्पिता की प्रिय सन्तान रहा है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन कालों में शक्तिशाली एवं महान् जातियों से महान् विचारों का प्रादुर्भाव हुआ है। समय-समय पर आश्चर्यजनक विचार एक जाति से दूसरी के पास पहुँचे हैं। राष्ट्रीय जीवन के उमड़ते हुए ज्वारों ने अतीत में और वर्तमान काल में महासत्य एवं शक्ति के बीजों को दूर-दूर तक बिखेरा है। किन्तु मित्रों ! मेरे शब्दों पर ध्यान दो। सदैव यह विचार-संक्रमण रणभेरी के घोष के साथ युद्धरत सेनाओं के माध्यम से ही हुआ है। प्रत्येक विचार को पहले रक्त की बाढ में डूबना पड़ा। प्रत्येक विचार को लाखों मानवों की रक्तधारा में तैरना पड़ा। शक्ति के प्रत्येक शब्द के पीछे असंखय लोगों का हाहाकार, अनाथों की चीत्कार एवं विधवाओं का अजस्र अश्रुपात सदैव विद्यमान रहा। मुख्यतया इसी मार्ग से अन्य जातियों के विचार संसार में पहुँचे।

जब ग्रीस का अस्तित्व नहीं था, रोम भविष्य के अन्धकार के गर्भ में छिपा हुआ था, जब आधुनिक यूरोपवासियों के पुरखे जंगलों में रहते थे और अपने शरीरों को नीले रंग से रँगा करते थे, उस समय भी भारत में कर्मचेतना का साम्राज्य था। उससे भी पूर्व, जिसका इतिहास के पास कोई लेखा नहीं, जिस सुदूर अतीत के गहन अन्धकार में झाँकने का साहस परम्परागत किंवदन्ती भी नहीं कर पाती, उस सुदूर अतीत के अब तक, भारतवर्ष से न जाने कितनी विचार तरंगें निकली हैं, किन्तु उनका प्रत्येक शब्द

अपने आगे शान्ति और पीछे आशीर्वाद लेकर गया है। संसार की सभी जातियों में केवल हम ही हैं जिन्होंने कभी दूसरों पर सैनिक–विजय प्राप्ति का पथ नहीं अपनाया और इसी कारण हम आशीर्वाद के पात्र हैं।

अमर भारत

एक समय था, जब ग्रीक –सेनाओं के सैनिक सञ्चलन के पदाघात से धरती काँपा करती थी। किन्तु, पृथ्वीतल पर से उसका अस्तित्व मिट गया। अब सुनाने के लिए उसकी एक गाथा भी शेष नहीं है। ग्रीकों का वह गौरव–सूर्य सदा–सर्वदा के लिए अस्त हो गया। एक समय था जब संसार की प्रत्येक उपभोग्य वस्तु पर रोम का श्येनांकित ध्वज उड़ा करता था। सर्वत्र रोम की प्रभुता का दबदबा था और वह मानवता के सर पर सवार थी। रोम का नाम लेते ही पृथ्वी काँप जाती थी, परन्तु आज उसी रोम का कैपिटोलिन पर्वत–खण्डहरों का ढेर बना हुआ है, जहाँ पहले सीजर राज्य करते थे वहीं आज मकड़ियाँ जाला बुनती हैं।

इनके अतिरिक्त कई अन्य गौरवशाली जातियाँ आयीं और चली गयीं; कुछ घण्टे उन्होंने बडी चमक–दमक के साथ, गर्व से छाती फुलाकर अपना प्रभुत्व फैलाया, अपने कलुषित जातीय जीवन से दूसरों को आक्रान्त किया; पर शीघ्र ही पानी के बुलबुलों के समान मिट गई । मानव–जीवन पर ये जातियाँ केवल इतनी ही छाप डाल सकी।

किन्तु हम आज भी जीवित हैं और यदि आज भी हमारे पुराण–ऋषि मनु वापस लौट आयें तो उन्हें आश्चर्य न होगा; उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि वे किसी नये देश में गये। वे देखेंगे कि सहस्रों–सहस्रों वर्षों के अनुभव एवं चिन्तन से निष्पन्न वही प्राचीन विधान आज भी यहाँ विद्यमान हैं; अनन्त शताब्दियों के अनुभव एवं युगों की अभिज्ञता का परिपाक–वह सनातन आचार–विचार आज भी वर्तमान है, और इतना ही नहीं, जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, एक के बाद दूसरे दुर्भाग्य के थपेड़े उन पर आघात करते जाते हैं। परन्तु उन पर सब आघातों का एक ही परिणाम हुआ है कि वह आचार दृढतर और स्थायी ही होते जाते हैं। किन्तु, इन सब विधानों एवं आचारों का केन्द्र कहाँ हैं ? किस हृदय में रक्त सञ्चरित होकर उन्हें पुष्ट बना रहा है ? हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूल स्रोत कहाँ है ? इन प्रश्नों के उत्तर में सम्पूर्ण संसार के पर्यटन एवं अनुभव के पश्चात् मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका केन्द्र हमारा धर्म है।

यही वह भारतवर्ष है जो अनेक शताब्दियों तक शत–शत विदेशी आक्रमणों के आघातों को झेल चुका है। यही वह देश है जो संसार की किसी भी चट्टान से अधिक दृढ़ता से अपने अक्षय पौरुष एवं अमर जीवन–शक्ति के साथ खडा हुआ है। इसकी जीवन–शक्ति भी आत्मा के समान ही अनादि–अनन्त एवं अमर है और हमें ऐसे देश की सन्तान होने का गौरव प्राप्त है।

धर्म : भारत की आत्मा

प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य विधाता के द्वारा पूर्व-निर्धारित है। प्रत्येक राष्ट्र के पास संसार को देने के लिए कोई न कोई सन्देश है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी विशेष संकल्प की पूर्ति करनी है। अतः, प्रारम्भ में ही हमें अपनी जाति के जीवन लक्ष्य को समझ लेना होगा। उसे कौन-सा दैवी लक्ष्य पूर्ण करना है, विभिन्न राष्ट्रों के अभियान में उसे कहाँ और कौन-सा स्थान ग्रहण करना है, जातियों के सम्मिलित संगीत में उसे कौन-सा स्वर मिलाना है ?

हम हिन्दू हैं

हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ और न मैं उन लोगों से सहमत हूँ जो समझते हैं कि इस शब्द के कोई बुरे अर्थ हैं। प्राचीनकाल में इस शब्द का अर्थ केवल इतना था-''सिन्धु तट के इस ओर बसने वाले लोग।'' आज भले ही हमसे घृणा रखनेवाले अनेक लोग इस शब्द पर कुत्सित अर्थ आरोपित करना चाहते हों, पर केवल नाम में क्या धरा है ? यह तो हम पर निर्भर करता है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक हो जो महिमामय है, आध्यात्मिक है अथवा वह केवल कलंकित, पददलित, निकम्मी और धर्मभ्रष्ट जाति का प्रतीक है। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ लगाया जाता है, तो उसकी परवाह मत करो। आओ ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भी भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पायी है।

मेरे जीवन का यह सिद्धान्त रहा है कि मुझे अपने पूर्वजों को अपनाने में कभी लज्जा नहीं आई। मैं सबसे गर्वीले मनुष्यों में से एक हूँ। किन्तु, मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दूँ, यह गर्व मुझे अपने कारण नहीं अपितु अपने पूर्वजों के कारण है। अतीत का मैंने जितना ही अध्ययन किया है, जितनी ही मैंने भूतकाल पर दृष्टि डाली है, यह गर्व मुझमें उतना ही बढता गया है। उसने मुझे साहसपूर्ण निष्ठा और शक्ति प्रदान की है। उसने मुझे धरती की धूल से उठाकर ऊपर खड़ा कर दिया और अपने महान् पूर्वजों के द्वारा निर्धारित उस महायोजना को पूर्ण करने में जुटा दिया। उन प्राचीन आर्यों की सन्तानों ! भगवत्कृपा से तुम भी उस गर्व से परिपूर्ण हो जाओ। तुम्हारे रक्त में अपने पूर्वजों के लिए उसी श्रद्धा का संचार हो जाय ! यह तुम्हारे रग-रग में व्याप्त हो जाये और तुम संसार के उद्धार के लिए सचेष्ट हो जाओ।

प्रत्येक राष्ट्र का एक दैवी लक्ष्य

जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है, उसी प्रकार राष्ट्रीय व्यक्तित्व भी होता है। जैसे एक व्यक्ति कुछ विशिष्ट बातों में, कुछ विशिष्ट लक्षणों में अन्य

व्यक्तियों से भिन्न होता है, उसी प्रकार एक जाति अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्य जातियों से भिन्न होती है और जिस प्रकार प्रकृति की योजना में किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना ही प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होता है, जिस प्रकार उसके अपने पिछले कर्मों द्वारा उसकी भावी दिशा निर्धारित हो जाती है, ठीक ऐसा ही राष्ट्रों के साथ होता है। प्रत्येक राष्ट्र को एक पूर्व-निर्धारित लक्ष्य को पूर्ण करना है। प्रत्येक राष्ट्र को एक विशेष सन्देश देना है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी व्रत-विशेष का उद्यापन कराना है। अतः प्रारम्भ से ही हमें अपनी जाति के व्रत को, उसके पूर्व-निर्धारित लक्ष्य को समझ लेना होगा। उसे राष्ट्रों की पंक्ति में कौन-सा स्थान ग्रहण करना है ? विभिन्न जातियों के सम्मिलित संगीत में कौन-सा स्वर मिलाना है।

राष्ट्रीय आत्मा

अपने देश में बचपन में हम किस्से सुना करते थे कि कुछ सर्पों के फण में मणि होती है। और, जब तक मणि वहाँ है उसे किसी भी उपाय से नहीं मारा जा सकता। हमने कहानियों में ऐसे दैत्यों-दानवों के बारे में सुना है जिनके प्राण किन्हीं छोटी-छोटी चिड़ियों में बसे होते हैं। और, जब तक वे चिड़ियाँ सुरक्षित हैं संसार की कोई भी शक्ति उन दैत्यों का संहार नहीं कर सकती-चाहे तुम उनके टुकडे-टुकडे ही क्यों न कर डालो या कुछ भी करो, वे दैत्य नहीं मर सकते। यही बात राष्ट्रों के बारे में भी सत्य है। प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दु विशेष में केन्द्रित रहते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्मस्थान पर आघात नहीं होता, तब तक वह राष्ट्र नहीं मर सकता।

इसके अतिरिक्त एक अन्य बात भी आप देखेंगे कि यदि किसी राष्ट्र के केवल ऐसे अधिकारों का अपहरण किया जाय, जिनका उसके राष्ट्रीय उद्देश्य से गहरा सम्बन्ध नहीं है, यदि ऐसे सब अधिकार भी छीन लिये जायें तो भी उस राष्ट्र को बहुत अधिक असन्तोष न होगा। किन्तु, जब उस मूलभूत उद्देश्य पर, जिस पर राष्ट्रीय जीवन का सम्पूर्ण महल टिका है, छोटा आघात भी होगा तो वह राष्ट्र प्रचण्ड शक्ति से उसका प्रतिरोध करेगा।

सोमनाथ से शिक्षा लो

तुम जो युगों तक धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था, उसके लिए अन्य सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था, यहाँ तक कि मृत्यु को भी गले लगाया था। विदेशी विजेताओं ने मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े, किन्तु जैसे ही वह आँधी गुजरी, मन्दिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया। दक्षिण भारत के ऐसे कुछ प्राचीन मन्दिर विशेषकर गुजरात का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें अक्षय ज्ञान प्रदान करेगा। जाति के इतिहास के प्रति जिस गहरी दृष्टि को वे प्रदान

करते हैं, वह ढेरों पुस्तकों से नहीं मिल सकती। ध्यान से देखो, इन मन्दिरों पर सैकड़ों आक्रमणों एवं सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न किस तरह अङ्कित हैं ? वे बार–बार नष्ट हुए और खण्डहरों में से पुनः–पुनः उठ खड़े हुए–पहले की ही भाँति सशक्त एवं नवजीवनयुक्त । यही है हमारा राष्ट्रीय मानस, यही है हमारा राष्ट्रीय जीवन–प्रवाह। इसका अनुसरण करो और गौरव प्राप्त करो। इसे त्याग दोगे तो मृत्यु निश्चित है। जिस क्षण तुम इस जीवन–प्रवाह से बाहर कदम उठाओगे मृत्यु एवं पूर्ण विनाश ही अवश्यम्भावी परिणाम होगा। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि अन्य बातें पूर्णतया अनावश्यक हैं। मेरा यह भी कहना नहीं है कि राजनीतिक अथवा सामाजिक सुधारों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है, ''मैं इसे तुम्हारे मस्तिष्क पर स्थायी रूप से अङ्कित कर देना चाहता हूँ कि यहाँ धर्म ही मुख्य आवश्यकता है, अन्य सब चीजें गौण हैं।''

प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य विधाता के द्वारा पूर्व–निर्धारित है। प्रत्येक राष्ट्र के पास संसार को देने के लिए कोई न कोई सन्देश है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी विशेष संकल्प की पूर्ति करनी है। अतः, प्रारम्भ में ही हमें अपनी जाति के जीवन–लक्ष्य को समझ लेना होगा। उसे कौन–सा दैवी लक्ष्य पूर्ण करना है, विभिन्न राष्ट्रों के अभियान में उसे कहाँ और कौन–सा स्थान ग्रहण करना है, जातियों के सम्मिलित संगीत में उसे कौन–सा स्वर मिलाना है ?

शिक्षित युवकों का कर्त्तव्य

यह सनातन धर्म का देश है। यह देश गिर अवश्य गया है, परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा। और ऐसा उठेगा कि दुनिया देखकर दंग रह जाएगी। देखा नहीं है, नदी या समुद्र में लहरें जितनी नीचे उतरती हैं, उतनी ही जोर से ऊपर उठती हैं। यहाँ पर भी वैसा ही होगा। देखते नहीं पूर्वाकाश में अरुणिमा फैल गयी है, सूर्योदय में अब अधिक विलम्ब नहीं है। तुम लोग अब कमर कसकर तैयार हो जाओ। केवल गृहस्थी करने से क्या होगा? इस समय तुम लोगों का कर्त्तव्य है - प्रान्त-प्रान्त में, गाँव-गाँव में जाकर लोगों को समझा देना कि अब आलस्य के साथ बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। सभी को जाकर समझा दो कि ब्राह्मणों के समान ही तुम्हारा भी धर्म में समान अधिकार है। चाण्डाल तक को इस अग्निमंत्र में दीक्षित करो और सरल भाषा में उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन के अत्यावश्यक विषयों का उपदेश दो। अन्यथा तुम्हारी लिखाई-पढ़ाई को धिक्कार है और तुम्हारे वेद-वेदान्त पढ़ने को भी धिक्कार है । **-स्वामी विवेकानन्द**

वर्तमान पीड़ा

ओ ! अँगरेजों का अन्धानुकरण करनेवालों !

इसे तुमलोग भी अच्छी तरह समझ लो जो भीतर-बाहर से साहब बने बैठे हो तथा यह कहकर चिल्लाते घूमते हो-''हम लोग नर-पशु हैं, हे यूरोपवासियों ! हमारा उद्धार करो'' और यह कहकर धूम मचाते हो कि ईसु आकर भारत में बैठे हैं। ओ बन्धु ! यहाँ ईसु भी नहीं आये, जिहोबा भी नहीं आये और न आयेंगे ही। वे इस समय अपने घर सँभाल रहे हैं, हमारे देश में आने का उन्हें अवसर नहीं है।

इस देश में वही पुरातन शिव जी बैठे हैं; वही काली माई पूजित हैं और बंशीधारी बंशी बजाते हैं। यह पुरातन शिव नन्दी पर सवार होकर भारतवर्ष से एक ओर सुमात्रा, बोर्नियो, सेलीबिस, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका के किनारे तक डमरू बजाते हुए एक समय घूमे थे; दूसरी ओर तिब्बत, चीन, जापान, साइबेरिया पर्यन्त पुरातन शिव ने अपने नन्दी को चराया था और अब भी चराते हैं। यह वही महाकाली हैं जिनकी पूजा चीन, जापान में भी होती है, जिसे ईसु की माँ ''मेरी'' समझकर ईसाई भी पूजा करते हैं।

यह जो हिमालय पर्वत है इसके उत्तर में कैलाश है, वहाँ पुरातन शिव का निवासस्थान है। उस कैलाश को दस सिर और बीस हाथवाला रावण भी नहीं हिला सका था फिर उसे हिलाना क्या किसी पादरी के बस का काम है? वे पुरातन शिव डमरू बजायेंगे, महाकाली पशुबलि और श्रीकृष्ण जी बंशी बजायेंगे, यही इस देश में हमेशा होगा।

वे हिमालय के समान अडिग है । कोई भी प्रयास चाहे वह ईसाई पादरियों का हो या अन्य धर्मोपदेशकों का, उन्हें हिलाने में कभी समर्थ नहीं हो सकेगा। यदि तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो हट जाओ। तुम दो-चार लोगों के लिए क्या सारे देश को अपना सर्वनाश करना होगा? इतनी बड़ी दुनिया तुम्हारे सामने फैली पड़ी है। क्यों नहीं, कहीं अन्यत्र, जहाँ तुम्हारे मनमाने विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध हो, जाकर अपने लिए स्थान खोजते हो? ऐसा तो कर ही नहीं सकोगे, साहस कहाँ है ? इस बूढे शिव का अन्न खायेंगे, विश्वासघात करेंगे और ईसु की जय मनायेंगे।

धिक्कार है ऐसे लोगों को, जो साहबों के सामने जाकर गिड़गिड़ाते हैं कि ''हम अति नीच हैं, हम बहुत क्षुद्र हैं, हमारा जो कुछ है सब कुछ खराब है।'' किन्तु, इनके लिए मैं कहता हूँ कि 'हाँ, यह सब तुम्हारे अपने बारे में सत्य हो सकता है; क्योंकि तुम सत्यवादी होने का दावा करते हो और हम तुम पर अविश्वास करें भी क्यों ? किन्तु, तुम अपने 'हम' के भीतर सम्पूर्ण राष्ट्र को क्यों समेट लेते हो? बताओ तो यह कहाँका शिष्टाचार है ?

आओ मनुष्य बनो

...और तुमलोग क्या करते हो ? . . .जीवनभर लम्बी-लम्बी डीगें हाँकना। ओ, बकवादियो, तुम हो क्या ? आओ, इन लोगों को देखो और जाकर लज्जा से अपना मुँह छिपा लो। ओ भ्रष्ट बुद्धिवालों ! तुम्हारी तो देश के बाहर निकलते ही जाति चली जायगी। अपनी खोपडी पर सैकड़ों वर्षों के दृढ अन्धविश्वासों का कूड़ा-कर्कट लाद कर बैठे, सैकड़ों वर्षों से केवल आहार की शुद्धि-अशुद्धि के झगड़े में ही अपनी समस्त शक्ति को नष्ट करनेवाले, सैकड़ों युगों के सामाजिक उत्पीड़न से जिनकी सारी मानवता का कचूमर निकल चुका है, भला बताओ तो सही, तुम कौन हो? और तुम इस समय कर ही क्या रहे हो ? मूर्खों, पुस्तकों को हाथ में लिए केवल समुद्र-तट पर विचरण कर,यूरोपीय मस्तिष्क की अपचित जूठन को बेसमझे रटना, तीस रुपये की मुंशीगिरी के लिए अथवा बहुत हुआ तो एक वकील बनने के लिए जी-जान से तड़पना, यही तो तरुण भारत की सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षा है। तिस पर प्रत्येक छात्र के झुण्ड के झुण्ड बच्चे भी पैदा हो जाते हैं, जो भूख से बिलबिलाते, उसके पैरों के चारों ओर चिपककर रोटी के लिए चिल्लाते हैं। क्या समुद्र में इतना पानी भी न रहा कि उसमें तुम, तुम्हारी पुस्तकें, तुम्हारा गाउन और तुम्हारी विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ आदि सब डूब सकें ?

हे ईसाई पादरियो !

यह सत्य नहीं है कि मैं किसी धर्म के विरुद्ध हूँ। यह भी उतना ही असत्य है कि मैं भारत के ईसाई प्रचारकों के प्रति कटुता रखता हूँ। किन्तु, मुझे उनके अमेरिका में धन एकत्रीकरण के कतिपय उपायों पर घोर आपत्ति है। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे चित्रों को प्रकाशित करने का क्या अर्थ है, जिनमें भारतीय माता को अपने बच्चों को गंगा में मगरमच्छ के मुँह में फेंकते हुए चित्रित किया गया है ? उसमें भी माता कृष्णवर्णी है, किन्तु बच्चे को गौरवर्णी चित्रित किया गया है, ताकि अधिक करुणा जाग्रत करके अधिक धन बटोरा जा सके। उन चित्रों का क्या अर्थ है जिनमें एक पुरुष को अपने हाथों अपनी पत्नी को जीवित जलाते दिखाया गया है, ताकि उसकी पत्नी प्रेतात्मा बनकर अपने पति के शत्रु को त्रस्त करे ? उन चित्रों का क्या उद्देश्य है जिनमें विशाल रथों के नीचे मनुष्य को कुचलते हुए दिखाया गया है। कुछ दिनों पूर्व इस देश में बच्चों के लिए एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसमें एक प्रचारक अपनी कलकत्ता-यात्रा का वर्णन करता है। वह कहता है कि उसने कलकत्ता की सडकों पर अन्धविश्वासियों को एक रथ के नीचे प्राण त्याग करते हुए देखा। ऐसे ही एक सज्जन को मैंने मेम्फिस में यह प्रचार करते हुए सुना कि भारत के प्रत्येक ग्राम में नन्हें-नन्हें शिशुओं की हड्डियों से भरा एक तालाब होता है।

आखिर, हिन्दुओं ने ईसा के इन चेलों का क्या बिगाड़ा है कि वे प्रत्येक ईसाई बच्चे को हिन्दुओं को 'दुष्ट', 'पतित' एवं 'पृथ्वी के सबसे भयंकर राक्षस' कहना सिखाते हैं। यहाँ विद्यालयों में रविवारीय शिक्षा का यह अनिवार्य अंग बन गया है कि उसमें बच्चों को प्रत्येक गैर-ईसाई से, विशेषकर हिन्दुओं से, घृणा सिखायी जाती है, ताकि वे अपने बाल्यकाल से ही इन ईसाई प्रचारकों को चन्दा देना सीख लें। यदि सत्य के लिए नहीं तो कम-से-कम अपने बच्चों की नैतिकता के हित से ही ईसाई प्रचारकों को ऐसी बातें बन्द कर देना चाहिए। इसमें क्या आश्चर्य है, यदि ऐसे बच्चे बड़े होकर निर्दयी और नृशंस स्त्री-पुरुष निकलें?

जो ईसाई प्रचारक अनन्त नरक के अत्याचारों का, वहाँ धधकनेवाली ज्वाला का भयावह चित्रण कर सकता है, उसी को अन्धविश्वासियों के द्वारा ऊँचा स्थान दिया जाता है। मेरे एक मित्र की परिचारिका को पुनरुत्थानवादी सभाओं में हिस्सा लेने के परिणामस्वरूप पागलखाने भेजना पड़ा था। नरकाग्नि की ज्वालाओं के भयावह चित्रण को वह सहन नहीं कर पाई। फिर मद्रास में प्रकाशित होनेवाली हिन्दू धर्म विरोधी पुस्तकों की ओर भी देखो। यदि कोई हिन्दू ईसाई धर्म के विरुद्ध ऐसी एक भी पंक्ति लिख दे तो ये ईसाई प्रचारक उसके विरुद्ध हिंसा और बदले का तूफान खड़ा कर देंगे।

मेरे देशवासियो ! मुझे इस देश में वापस लौटे एक वर्ष से अधिक हो गया। मैंने समाज का लगभग प्रत्येक कोना छान डाला है और तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर मैं तुम्हें बताता हूँ कि न तो हम राक्षस हैं, जैसा ईसाई प्रचारक हमारे बारे में संसार को बताते हैं और न वे देवदूत हैं, जैसा वे अपने बारे में दावा करते हैं। ईसाई प्रचारक हिन्दुओं की अनैतिकता, शिशु-हत्या एवं विवाह-प्रथा की बुराइयों के बारे में जितना कम बोलेंगे, उतना ही उनके लिए हितकर होगा। कुछ ईसाई देशों के ऐसे सच्चे चित्र भी हो सकते हैं, जिनके समक्ष ईसाई प्रचारकों द्वारा चित्रित हिन्दू समाज के काल्पनिक चित्र बिल्कुल फीके पड जायेंगे। किन्तु, मेरे जीवन का ध्येय वेतनभोगी निन्दक बनना नहीं है। मैं हिन्दू समाज की पूर्णता का दावा करनेवालों में से बिल्कुल नहीं हूँ। शायद ही कोई व्यक्ति हिन्दू समाज के दोषों एवं दुर्भाग्यपूर्ण शताब्दियों में उत्पन्न विकृतियों के प्रति मुझसे अधिक जागरुक होगा। ऐ विदेशी मित्रो ! यदि तुम सचमुच, हमारे देश के लिए सच्ची सहानुभूति लेकर सहायता के लिए आओ, न कि केवल विध्वंस के लिए तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करे। किन्तु, यदि एक पराजित जाति के सिर पर मौके-बेमौके गालियों की निरन्तर बौछार कर तुम केवल अपने राष्ट्र की नैतिक श्रेष्ठता का डंका पीटना चाहते हो तो मैं तुम्हें स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि यदि न्यायपूर्वक कोई तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास हुआ तो हिन्दू जाति संसार की समस्त जातियों से, संसार के समस्त अन्य राष्ट्रों से नैतिकता के क्षेत्र में बाँसों ऊँची सिद्ध होगी।

सफल जीवन का रहस्य

मस्तिष्क को उच्च आदर्श से भर दो

मांसपेशियों के द्वारा शक्ति का जो प्रगटीकरण होता है, उसे ही कार्य कहते हैं। किन्तु, जहाँ विचार नहीं, वहाँ कार्य नहीं। अतः, मस्तिष्क को उच्च विचारों एवं उच्च आदर्शों से भर दो। उन्हें दिन-रात अपने सामने रखो और तब उसमें से महान् कार्य निष्पन्न होगा।

आकाश को हर कोई देख सकता है, यहाँ तक कि धरती पर रेंगनेवाला क्षुद्र कीड़ा भी उस नीलाकाश को देखता है। किन्तु, वह हम सबसे कितनी दूर है ? यही बात आदर्श के साथ है। इसमें सन्देह नहीं कि वह बहुत दूर है, किन्तु साथ हम जानते हैं कि हमारे पास वह होना ही चाहिए। हम उच्चतम आदर्श अपने समक्ष रख सकते हैं। दुर्भाग्यवश इस जीवन में अधिकांश लोग लक्ष्यविहीन हो अँधेरे में भटक रहे हैं। यदि लक्ष्यवान् व्यक्ति एक सहस्र भूलें करता है, तो मेरा विश्वास है कि लक्ष्य-विहीन व्यक्ति पचास सहस्र भूलें करेगा। अतः, कोई न कोई आदर्श सामने होना चाहिए। उस आदर्श के बारे में हम अधिक-से-अधिक श्रवण करें, ताकि वह हमारे अन्तःकरण में, हमारे मस्तिष्क में, हमारी रगों में समा जाये। यहाँ तक कि रक्त की प्रत्येक बूंद में चैतन्य भर दे और शरीर के प्रत्येक रोम में समा जाय। हम हर क्षण उसी का चिन्तन करें। ''अन्तःकरण की परिपूर्णता में से ही वाणी मुखरित होती है और अन्तःकरण की परिपूर्णता के पश्चात् ही हाथ भी कार्य करते हैं।

सीप-समान बनो

मोती की सीप के समान बनो। एक बड़ी सुन्दर भारतीय कथा है कि यदि स्वाति नक्षत्र में वर्षा का एक बूँद भी उस सीप में पड़ जाता है तो वह मोती बन जाता है। सीप यह बात जानती है, अतः वे स्वाति नक्षत्र के चमकते ही जल की सतह पर आ जाती है और उस मूल्यवान् वर्षा की बूँद को पाने के लिए प्रतीक्षा करती रहती है। जैसे ही कोई बूँद उनके मुख से प्रवेश करती है वे सीप तुरन्त अपना मुँह बन्द कर लेती है और डुबकी लगाकर समुद्र के तल पर पहुँच जाती हैं। वहाँ वे धैर्यपूर्वक बूँद को मोती का रूप दे देती हैं।

हम भी वैसे ही बनें। पहले सुनो, तब मनन करो और अन्त में सब दुविधा को छोडकर अपने अन्तःकरण को बाह्य प्रभावों की ओर से बन्द कर लो और अपने अन्दर उस सत्य के पोषण में लग जाओ। एक विचार को केवल उसके नयेपन से आकर्षित हो अपना लेना और फिर उससे भी नये विचार के लिए उसको त्याग देने की वृत्ति से ही पूरी शक्तियाँ बिखर जाने का भय है। एक विचार को लो, तो उसे करो, उसे अन्त तक पहुँचाओ और जब तक उसके छोर पर न पहुँचो, उसे त्यागो मत। जो अपने लक्ष्य के

प्रति पागल हो गया है, उसे ही प्रकाश के दर्शन होते हैं। जो थोड़ा इधर–थोड़ा उधर मारते हैं, वे कोई लक्ष्य पूर्ण नहीं कर पाते। वे कुछ क्षणों के लिए बड़ा जोश दिखाते हैं, किन्तु वह शीघ' ठण्डा हो जाता है।

अतः, एक लक्ष्य अपनाओ। उस लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो। हर क्षण उसी का चिन्तन करो, उसी का स्वप्न देखो। उसी के सहारे जीवित रहो। मस्तिष्क, मांसपेशियाँ, नसें आदि शरीर के प्रत्येक अङ्ग उसी विचार से ओत–प्रोत हों और तब तक अन्य प्रत्येक विचार को किनारे पडा रहने दो। सफलता का यही राजमार्ग है, इसी मार्ग पर चलकर अब तक आध्यात्मिक महापुरुष पैदा हुए हैं। अन्यों को केवल बोलनेवाले यन्त्र समझो।

सफलता के लिए अत्यधिक अध्यवसाय एवं प्रबल इच्छाशक्ति का होना आवश्यक है। अध्यवसायी आत्मा कहती है,"मैं समुद्र को पी जाऊँगी।" मेरी इच्छामात्र से पर्वत चूर–चूर हो जायेंगे।" यह कर्मशक्ति, यह इच्छाशक्ति प्राप्त करो, कठोर परिश्रम करो और तुम निश्चित ही लक्ष्य पर पहुँच जाओगे।

महावीर को आदर्श मानो

तुम्हें महावीर के चरित्र को आदर्श के रूप में अपने सामने रखना होगा। देखो, किस प्रकार वे रामचन्द्र की आज्ञा पर समुद्र को लाँघ गये। उन्होंने अपने जीवन या मृत्यु की तनिक चिन्ता नहीं की। वे अपनी इन्द्रियों के पूर्ण स्वामी थे और अद्भुत प्रज्ञा से सम्पन्न थे। तुम्हें व्यक्तिगत सेवा के इस महान् आदर्श के नमूने पर अपने जीवन का निर्माण करना होगा। उसके द्वारा अन्य समस्त आदर्श भी जीवन में स्वतः धीरे–धीरे प्रकट होंगे। गुरु की आज्ञा का आँख मूँदकर पालन करो। ब्रह्मचर्य का निष्ठापूर्वक आचरण सफलता का मूलमन्त्र है। हनुमान जहाँ एक ओर सेवा के आदर्श के प्रतीक हैं, वही दूसरी ओर समस्त संसार को आतंकित कर देने वाले सिंहवत् साहस के भी प्रतीक हैं। राम के हित के लिए उन्हें अपने प्राणों का बलिदान करने में तनिक भी संकोच नहीं है। यहाँ तक कि विश्व के महान् देवता ब्रह्मा अथवा विष्णु के स्थान को प्राप्त करने की लालसा भी नहीं है। उनके जीवन का एक ही व्रत है–'राम की प्रत्येक इच्छा को क्रियान्वित करना।' ऐसी ही पूर्ण समर्पणकारी भक्ति चाहिए।

जिन खोजा,तिन पाइयाँ

एक सड़क पर घूमते हुए आलसी व्यक्ति ने एक बूढ़े व्यक्ति को अपने मकान के दरवाजे पर बैठे हुए देखा। उसने ठहरकर उस बूढे से एक ग्राम का पता–ठिकाना पूछा। उसने पूछा,"अमुक–अमुक ग्राम यहाँ से कितनी दूर है ?" बूढ़ा मौन रहा। उस आदमी ने कई बार उसी प्रश्न को दोहराया। तब भी कोई जवाब न मिला। इससे झुंझलाकर यात्री चलने के लिए मुड़ पडा। तभी बूढ़े ने खड़े होकर कहा, "अमुक ग्राम यहाँ से केवल

एक मील दूर है।'' ''क्या !'',यात्री ने कहा ''यही बात जब मैंने तुमसे पूछी, तब क्यों नहीं बतायी ?'' बूढ़े ने कहा–''क्योंकि तब तुम जाने के बारे में काफी उदासीन और ढीले दिखाई दे रहे थे और जब तुम पक्के इरादे के साथ जाने के लिए तैयार दीखते हो, तब तुम उत्तर पाने के अधिकारी हो गए हो।''

क्या तुम इस कहानी को स्मरण रखोगे ? कार्य में जुट जाओ, शेष साधन अपने आप पूरे हो जायेंगे। भगवान् ने गीता में कहा है–

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता 9/22)

''जो अनन्य भाव से मेरी ही उपासना करते हैं उनके योगक्षेम की चिन्ता मैं स्वयं करता हूँ।''

. . . ईसा के शब्दों को स्मरण रखो,''माँगो और वह तुम्हें मिलेगा, खोजो और तुम पा जाओगे। थपथपाओ और द्वार तुम्हारे लिए खुल जायेंगे।'' ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं, इनमें केवल रूपक या कल्पना नहीं है . . .

क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसकी तुमने सच्चे अन्तःकरण से कामना की हो और न मिली हो ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। इच्छा ने ही शरीर को पैदा किया। प्रकाश ने ही तुम्हारे मस्तक पर दो छेद पैदा किये जिन्हें तुम आँखें कहते हो। यदि प्रकाश न होता तो तुम्हारे पास आँखें न होती। शब्द ने कानों को बनाया। विषय पहले आये और उन्हें ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ बाद में।

माँगो और तुम्हें मिलेगा

लेकिन तुम्हें समझना होगा कि इच्छा–इच्छा में भी अन्तर होता है।

एक शिष्य अपने गुरु के पास गया और बोला–''श्रीमन्, मैं ईश्वर को पाना चाहता हूँ।'' गुरु ने उस युवक की ओर देखा, एक शब्द नहीं बोले और केवल मुस्कुरा दिए। युवक प्रतिदिन आता था और आग्रह करता था कि उसे ईश्वर चाहिए। किन्तु, उस वृद्ध को युवक की अपेक्षा अधिक ज्ञान था। एक दिन जब बहुत गर्मी पड़ रही थी, गुरु ने युवक से अपने साथ चलकर नदी में स्नान करने को कहा। युवक ने जैसे ही नदी में डुबकी लगायी, वृद्ध ने पीछे से आकर उसे बलपूर्वक पानी में ही दबा लिया। जब युवक कुछ देर तक मुक्ति के लिए छटपटा चुका, तब उन्होंने उसे छोड़ दिया और पूछा कि ''जब तुम पानी के अन्दर थे, तब तुम्हारी एकमेव इच्छा क्या थी ?'' शिष्य ने उत्तर दिया,''हवा का केवल साँस।'' तब गुरु ने कहा ''क्या तुम्हारी ईश्वर को पाने की इच्छा भी उतनी तीव्र है ?'' यदि हो तो वह तुम्हें एक क्षण में मिल जायगा।

जब तक तुम्हारी भूख, तुम्हारी इच्छा उतनी ही तीव्र नहीं है, तब तक तुम परमात्मा को कदापि नहीं पा सकते चाहे तुम कितना ही बौद्धिक व्यायाम अथवा कर्मकाण्ड करो।

बुद्ध की करुणा अपनाओ

क्या तुम्हारे मन में दूसरों के प्रति सहानुभूति है ? यदि है तो तुम एकत्व का साक्षात्कार कर रहे हो। यदि तुम्हारे अन्दर दूसरों के प्रति सहानुभूति नहीं तो तुम चाहे संसार के सबसे बडे बुद्धिवादी दैत्य हो, किन्तु तुम कुछ भी नहीं बन सकोगे। तुम निरे शुष्क बुद्धिवादी हो और वैसे ही सदा बने रहोगे।

क्या तुमने विश्व के इतिहास से कभी यह जानने का प्रयास किया है कि धर्म–प्रवर्तकों की शक्ति का स्रोत कहाँ है ? क्या वह बुद्धिबल में था ? क्या उनमें से किसी ने भी दर्शन पर कोई सुन्दर पुस्तक लिखी, तर्क की जटिल गुत्थियों में उलझने का प्रयास किया ? एक ने भी नहीं। वे केवल थोड़े से शब्द बोले। ईसा के समान सहानुभूति रखो और तुम ईसा बन जाओगे। बुद्ध के समान सहानुभूति करो और तुम बुद्ध बन जाओगे। यह सहानुभूति की भावना ही वह जीवन है, शक्ति है, बल है, जिसके बिना कितने भी बौद्धिक व्यायाम से तुम ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकते। बुद्धि तो केवल क्रिया–चेतनाहीन अङ्ग है। भावना का संयोग होने पर ही उस अङ्ग में गति आती है और वे कार्य करने लगते हैं। समस्त संसार में ऐसा ही होता है और इस बात को तुम्हें सदा स्मरण रखना चाहिए।

वाल्मीकि का प्रथम श्लोक करुणा से उद्भूत

एक दिन जब महर्षि वाल्मीकि पवित्र गङ्गा नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे, तब उन्होंने क्रौंच के एक जोड़े को आकाश में विहार करते और एक दूसरे का चुम्बन करते देखा। महर्षि उनकी यह क्रीडा देखकर प्रसन्न हुए, किन्तु दूसरे ही क्षण एक तीर उनके निकट से गुजरा और उसके द्वारा नर क्रौंच मारा गया। वह धरती पर गिर गया तब मादा क्रौंच विषाद में भरकर चीत्कार करती हुई अपने प्रिय साथी के शव के चारों ओर मँडराती रही। उस दृश्य को देखकर कवि के अन्तःकरण में इतनी वेदना और करुणा उमड़ी कि उन्होंने हत्यारे निषाद को कहा, ''तू दुष्ट है, तुझमें दया का रंचमात्र भी नहीं ! तेरा हत्यारा हाथ प्रेम को देखकर भी नहीं रुका !''

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड)

तभी कवि ने अपने मन में सोचा, ''यह क्या ? यह मैं क्या कह गया ? इस ढंग से तो मैं इसके पूर्व कभी नहीं बोला था।'' और तब एक देववाणी सुनायी दी, ''डरो मत !

यह कविता है जो तुम्हारे मुख से निकल रही है। संसार के कल्याण के लिए राम का चरित्र काव्य में लिखो।'' इस प्रकार प्रथम कविता का जन्म हुआ। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से करुणा के उद्रेक में प्रथम श्लोक का उच्चार हुआ। उसके बाद ही उन्होंने राम के चरित्र पर 'रामायण' जैसी सुन्दर रचना की।

सही दृष्टिकोण

तुम जो कुछ कार्य करते हो, वह बहिर्मुखी है। वह तुम्हारे अपने कल्याण के लिए है। ऐसा मत समझो कि ईश्वर कहीं खाई में गिर पड़ा, ताकि हम-तुम कोई अस्पताल आदि बनवाकर उसकी सहायता कर सकें। वह केवल तुम्हें काम करने का अवसर देता है। यदि वह तुम्हें इस विशाल व्यायामशाला में अपने स्नायुओं को व्यायाम कराने का अवसर देता है, तो इसलिए नहीं कि उसे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है, बल्कि इसलिए कि तुम स्वयं अपनी सहायता कर सको ! क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी सहायता के अभाव में एक चींटी भी मर सकेगी ? यह विचार ईश्वर-निन्दा है।

हम धन्य हैं कि हमें उसके लिए कार्य करने का, न कि उसकी सहायता करने का, सुअवसर मिला। इस 'सहायता' शब्द को अपने मस्तिष्क से निकाल फेंको। तुम सहायता नहीं कर सकते। यह विचार केवल नास्तिकता है।

...तुम्हें उसकी पूजा का अवसर दिया गया है। इस श्रद्धापूर्वक भाव से सम्पूर्ण विश्व की ओर देखो। तब तुम्हारे अन्दर पूर्ण निष्काम भाव जगेगा। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। यही कार्य के प्रति सही दृष्टिकोण है। यही कर्मयोग का रहस्य है।

निःस्वार्थ कार्यकर्ता ही सबसे सुखी है

भिखारी को कभी सुख नहीं मिलता। उसे दयापूर्वक एक टुकडा मिल जाता है, किन्तु उसके पीछे उपेक्षा और घृणा का भाव रहता है। कम से कम यह भाव तो रहता ही है कि भिखारी कोई तुच्छ वस्तु है। वह जो कुछ पाता है, उसमें उसे सुख नहीं मिलता।

हम सब भिखारी हैं। हम जो कर्म करते हैं उसका बदला चाहते हैं। हम सब व्यापारी बन गए हैं। हम जीवन का व्यापार करते हैं, गुणों का व्यापार करते हैं, धर्म का व्यापार करते हैं। आह ! हम प्रेम का भी व्यापार करते हैं।

यदि तुम व्यापार ही करना चाहते हो, यदि तुम्हारे सामने लेना-देना ही है, क्रय-विक्रय का ही प्रश्न है तो फिर क्रय-विक्रय के नियमों का पालन करो। समय अच्छा भी होता है और बुरा भी। कभी कीमतें ऊपर चढती हैं और कभी नीचे गिरती हैं। व्यापार में तुम सदैव घाटे के लिए प्रस्तुत रहते हो। यह दर्पण में चेहरा देखने के समान है। उसमें तुम्हारा चेहरा दिखाई देता है। यदि तुम मुँह बनाते हो तो वह भी मुँह बनाता है। तुम हँसते हो तो दर्पण भी हँसने लगता है। क्रय-विक्रय, आदान-प्रदान में इसी प्रकार होता है।

किन्तु हम पकड़े जाते हैं ? कैसे ? जो हमने दिया उसके कारण नहीं, अपितु जो हम अपेक्षा करते हैं उसके कारण। हम अपने स्नेह के बदले दुःख पाते हैं। इसलिए नहीं कि हमने प्रेम किया, बल्कि इसलिए कि हमने बदले में प्रेम चाहा। जब किसी चीज की चाह ही नहीं तो दुःख कैसा ? इच्छा, चाह ही प्रत्येक दुःख की जननी है। इच्छायें सफलता और असफलता के नियमों से बँधी हुई हैं। अतः, इच्छाओं के साथ दुःख का आना अनिवार्य है।

. . .निन्यानवे प्रतिशत साधु वासना और कांचन को त्याग देने के बाद भी यश और लोकेषणा की इच्छा के दास हो जाते हैं। क्या तुम्हें नहीं ज्ञात कि ''समस्त वासनाओं से मुक्त श्रेष्ठ मनुष्यों का भी लोकेषणा पीछा नहीं छोडती।'' कहने में इससे सरल कोई बात नहीं कि ''मैं कर्म के लिए कर्म करता हूँ, किन्तु व्यवहार में इससे कठिन कोई अन्य वस्तु नहीं। मैं बीस मील तक अपने सिर पर चलकर उस व्यक्ति के दर्शनों के लिए जाने को तैयार हूँ जो केवल कर्म के लिए कर्म कर सके। कहीं न कहीं कोई कामना विद्यमान रहती ही है। यदि धन की कामना नहीं है तो सत्ता की भूख है। यदि सत्ता की भूख नहीं है, तो यश की लालसा है। इस प्रकार कहीं, न कहीं किसी न किसी रूप में कोई न कोई कामना छिपी ही रहती है।

यह सकाम कर्म ही दुःख का जनक है। जिस कर्म को हम अपने अन्तःकरण का स्वामी बनकर करते हैं, केवल वही हमें निष्काम बनाता है और आनन्द देता है।

निष्काम कर्म ही सर्वोत्तम

. . . अनेक लोग कहते हैं कि बिना कामना के तुम कर्म ही नहीं कर सकते। वे ऐसी बात कहते है; क्योंकि उन्होंने उन्मादी कट्टरता के प्रभाव के अतिरिक्त कहीं अन्य निष्काम कर्म देखा ही नहीं।

. . . निष्काम कर्म ही कर्म का सर्वोत्तम रूप है। कोई कामना नहीं–न धन की, न यश की, न किसी अन्य बात की। जब मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तब वह बुद्ध बन जाता है। तब उसमें से संसार को बदल देनेवाली शक्ति–महाशक्ति का आविर्भाव होता है। वही व्यक्ति कर्मयोग के सर्वोच्च आदर्श का प्रतीक बन जाता है।

. . .बुद्ध अकेले धर्म–प्रवर्तक थे जिन्होंने कहा–''मुझे ईश्वर–सम्बन्धी तुम्हारे ढेरों सिद्धान्तों को जानने की कोई उत्सुकता नहीं। आत्मा–सम्बन्धी इन जटिल एवं सूक्ष्म सिद्धान्तों की चर्चा करने से लाभ ही क्या है ? भले बनो और भलाई करो और इसी मार्ग पर चलकर तुम निर्वाण भी पा जाओगे और महासत्य का साक्षात्कार भी कर सकोगे। उन्होंने जीवनभर व्यक्तिगत कामनाओं से अलिप्त रहकर कार्य किया और उनसे अधिक कौन कार्य कर पाया है ? इतिहास में मुझे कोई दूसरा उदाहरण बताओ जो उनसे अधिक ऊँचा उठ सका हो. . .।

. . .वे आदर्श कर्मयोगी थे, पूर्ण निष्काम थे। सम्पूर्ण मानव इतिहास में अब तक उनसे बड़ा महापुरुष पैदा नहीं हुआ। उनमें हृदय और मस्तिष्क का महानतम सम्मिलन हुआ, जिसकी कोई तुलना नहीं मिलती; आत्म–शक्ति की अब तक उससे महान् अभिव्यक्ति नहीं हुई...।

सूर्य समुद्र से जल ग्रहण करता है, किन्तु उसे वर्षा रूप में लौटाने के लिए। तुम भी आदान–प्रदान के एक यन्त्र मात्र हो। तुम ग्रहण करते हो, ताकि तुम दे सको। अतः, बदले में कुछ मत माँगो; क्योंकि तुम जितना अधिक दोगे उतना ही अधिक पाओगे। तुम जितनी जल्दी इस कमरे की हवा खाली करोगे, उतने ही शीघ्र बाहरी हवा इसे भर देगी। यदि तुम सब दरवाजों और छिद्रों को बन्द कर दोगे, तब जो अन्दर है वह अन्दर रह जावेगी, किन्तु जो बाहर है वह कभी अन्दर न आ सकेगी। परिणामस्वरूप अन्दर की हवा स्थिर होकर गन्दी होती जायगी और विषाक्त बन जायेगी। नदी का प्रवाह सतत समुद्र में गिर रहा है और सतत भरता जा रहा है। उसका समुद्र में गिरने का द्वार अवरूद्ध मत करो। जिस क्षण तुम यह करोगे, मृत्यु तुम्हें पकड़ लेगी।

निष्काम कार्यकर्ता ही सर्वाधिक सफल होता है

प्रकृति और मानवता के लिए निष्काम भाव से किये गए कर्म से ही मनुष्य आसक्ति के बन्धन में नहीं फँसता।

जो मनुष्य स्वाधीन एवं प्रेमभाव से कर्म करता है वह फल की परवाह नहीं करता, किन्तु गुलाम कोड़ा लगने पर ही कर्म करने का अभ्यस्त होता है और सेवक अपना वेतन चाहता है। ऐसा ही सम्पूर्ण जीवन में होता है। उदाहरणस्वरूप, सार्वजनिक जीवन को ही लें। सार्वजनिक वक्ता अपने श्रोताओं से थोड़ी प्रशंसा, फुसफुसाहट एवं तालियों की अपेक्षा करता है। यदि तुम उसे यह नहीं दे सकते तो तुम उसके उत्साह को ठण्डा कर दोगे; क्योंकि वह उसका भूखा रहता है। यह दासवत् कार्य करना है। ऐसी परिस्थितियों में बदले में कुछ अपेक्षा रखना ही मनुष्य का स्वभाव बन जाता है।

प्रत्येक सफल मनुष्य के जीवन में अटूट निष्ठा, तीव्र प्रामाणिकता का कोई न कोई केन्द्र अवश्य रहता है और वही उसके जीवन में सफलता का मूल स्रोत होता है। हो सकता है वह पूर्णतया निःस्वार्थ न बन सका हो, किन्तु वह उस ओर बढ रहा है। यदि वह पूर्णतया निष्काम बन गया होता तो वह भी बुद्ध अथवा ईसा के समान सफलता के महान् शिखर पर ही पहुँच गया होता। निःस्वार्थता की मात्रा के अनुपात में ही सफलता की मात्रा रहती है।

अस्तु, सच्ची सफलता और सच्चे सुख का महामन्त्र यही है। जो किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं चाहता, ऐसा पूर्णतया निष्काम मनुष्य ही सबसे अधिक सफल रहता है।

यह बडा विरोधाभास लगेगा। क्या हम नहीं जानते कि प्रत्येक निःस्वार्थी व्यक्ति को जीवन में धोखा मिलता है, हानि उठानी पडती है ? ऊपर से देखने पर यह सत्य है। ''ईसा निःस्वार्थ थे, किन्तु उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया'', यह सच है, किन्तु हम जानते हैं कि उनकी निःस्वार्थता ही उस महान् विजय का एकमेव कारण है, जिसके परिणामस्वरूप लाखों–लाखों जीवनों को सच्ची सफलता के मुकुट ने सुशोभित किया।

इस क्षुद्र 'मैं' से मुक्ति पाओ

यह अहंभाव कि 'मैंने अमुक किया', 'मैं अमुक कर रहा हूँ', योग मार्ग का अवलम्बन करते समय शेष नहीं रहता। पाश्चात्य लोग यह बात नहीं समझ पाते। वे कहते हैं कि यदि अहंचेतना तनिक न रहे, यदि यह अहंभाव बिल्कुल समाप्त हो जाय तो मनुष्य काम ही कैसे कर सकता है? किन्तु, जिस समय कोई मनुष्य स्वयं को बिल्कुल भुलाकर एकाग्र मन से कार्य करता है, उस समय जो कार्य होता है, वह लाख गुना अच्छा होता है। यह अनुभव हममें से प्रत्येक ने अपने जीवन में प्राप्त किया होगा।

हम भोजन पचाना आदि अनेक कार्य अनजाने में करते हैं, अनेक कार्य चेतनापूर्वक करते हैं और कुछ कार्य में जब हम अपने क्षुद्र 'अहं' को बिलकुल भुला देते हैं, तब मानो समाधि अवस्था में पहुँच कर करते हैं।

यदि चित्रकार अपनी 'अहंचेतना' को बिल्कुल खोकर अपनी कलाकृति में ही पूर्णतया खो जाय, तो वह कला के अद्वितीय नमूने निर्माण कर सकेगा। जो योग के द्वारा उस महाप्रभु के साथ एक हो जाता है, वह अपने समस्त कार्यों को एकाग्र मन से करता है और किसी व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा नहीं करता। इस प्रकार कार्य करने से संसार का केवल भला ही होता है, उससे कभी हानि नहीं हो सकती। गीता का सन्देश है कि प्रत्येक कार्य इसी भावना से किया जाना चाहिए।

...व्यक्तिगत 'अहं' चेतना ही सुदृढ दीवार है जिसमें हम स्वयं को बन्द कर लेते हैं। हम प्रत्येक वस्तु का नाता अपने से जोड़ लेते हैं। सोचते हैं, मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैंने क्या नहीं किया। इस क्षुद्र 'मैं' से छुटकारा पाओ, अपने अन्दर घुसी हुई इस पैशाचिकता को मार डालो। ''मैं नहीं, तू ही''–यही कहो, यही अनुभव करो, उसके अनुसार ही जियो। जब तक हम 'अहं'– निर्मित इस संकुचित दुनिया का परित्याग नहीं कर देते, तब तक हम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते...।

शक्ति के पुञ्ज वे मौन पुरुष हैं, जो केवल जीवित रहते हैं और स्नेह करते हैं तथा चुपचाप अपने व्यक्तित्व को कर्मक्षेत्र से हटा लेते है। वे कभी 'मैं' और 'मेरा' की रट नहीं लगाते। वे केवल निमित्त बनने में ही स्वयं को कृतार्थ मानते हैं। ऐसे मनुष्यों में से ही ईसा और बुद्ध प्रकट होते हैं। वे मानव रूप में पूँजीभूत आदर्श मात्र होते हैं, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

...परमात्मा ने स्वयं को सर्वोत्तम ढंग से छिपा रखा है, अतः उसका कार्य ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार जो अपने को सर्वोत्तम ढंग से पीछे रख सकता है, वही सबसे अच्छा और अधिक कार्य कर सकता है। अपने आप पर विजय पा लो तो समस्त विश्व तुम्हारा हो जायगा।

आदर्श के लिये जियो

जो किसी बात की चिन्ता नहीं करता, उसके पास सब कुछ आप ही आप पहुँच जाता है। धन-सम्पत्ति तो चञ्चल नारी के समान है, वह उसकी परवाह नहीं करती जो उसे बहुत चाहता है। धन, अपनी वर्षा उसके निकट आकर कर जाता है, जिसने उसकी परवाह कभी नहीं की, इसी प्रकार लोक-प्रसिद्धि भी इतनी अधिक मात्रा में आती है कि वह सिरदर्द और भार बन जाती है। ये सब सदा स्वामी के पास जाते हैं। उनका दास कभी कुछ नहीं पाता। स्वामी वही है जो उनके बिना भी रह सके, जिसका जीवन संसार की क्षुद्र एवं मूर्खतापूर्ण चीजों पर निर्भर नहीं करता। एक, और केवल एक आदर्श के लिये जियो। उस आदर्श को इतना महान्, इतना शक्तिशाली बनाओ कि उसके अतिरिक्त अन्य कुछ अन्तःकरण में रह ही न जाए। किसी अन्य वस्तु के लिए स्थान नहीं, किसी अन्य बात के लिए समय नहीं ।

साधनों की महत्ता

अपने जीवन में मैंने सबसे बडा पाठ यह सीखा है कि अपने कार्य-साधना की ओर भी उतना ही ध्यान दो जितना उसके साध्य की ओर। सफलता का मूल रहस्य इसी में है कि साधनों को भी उतना ही महत्त्व दिया जाय जितना साध्य को।

हमारे जीवन की भारी कमी यह है कि हम आदर्श की ओर इतना अधिक खिंच जाते हैं, साध्य का जादू हम पर इतनी बुरी तरह सवार हो जाता है, वह हमें इतना मोह लेता है, वह हमारे मस्तिष्क में इतना बडा आकार धारण कर लेता है कि उसकी प्राप्ति के साधनभूत छोटी-छोटी बातें हमारी दृष्टि से बिल्कुल ओझल हो जाती हैं।

जब कभी असफलता मिलती है, तब यदि हम उसका आलोचनात्मक विश्लेषण करें तो निन्यानवे प्रतिशत मामलों में हम एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि साधनों की ओर हमारा ध्यान न देना ही उसका कारण है। आवश्यकता इस बात की है कि हम साधनों की पुष्टता एवं पूर्णता की ओर उचित ध्यान दें। यदि साधन बिल्कुल सही है तो साध्य प्राप्त होकर रहेगा। हम भूल जाते हैं कि कारण ही परिणाम का जनक होता है। परिणाम अपने आप पैदा नहीं हो जाता। और जब तक कारण सही, अचूक और सशक्त नहीं होंगे, तब तक कोई परिणाम नहीं निकलेगा। एक बार यदि आदर्श को चुन लिया और साधनों का निर्णय कर लिया तो फिर यदि कुछ समय के लिए हम आदर्श को लगभग भूल भी जायँ तो कोई हर्ज नहीं; क्योंकि हमें निश्चय है कि साधनों की पूर्णता के साथ

उसकी सिद्धि अपरिहार्य है, तो फिर कार्य की क्यों चिन्ता करें ? कार्य–कारण नियम के अनुसार उसे तो होना ही है। हम कारण की चिन्ता करें, परिणाम अपनी चिन्ता स्वयं करेगा। आदर्श की प्राप्ति परिणाममात्र है। साधन उसका कारण है। अतः, साधनों की चिन्ता ही जीवन की सफलता की कुँजी है।

कठिनाइयों का निर्भय होकर सामना करो

....एक बार जब मैं वाराणसी में था, मैं एक ऐसे स्थान से निकला, जिसके एक ओर विशाल जलाशय था और दूसरी ओर एक ऊँची दीवार। जमीन पर बहुत सारे बन्दर बैठे हुए थे। वाराणसी के बन्दर विशालकाय और शैतान होते हैं। उन पर यह भूत सवार हो गया कि मैं उनकी सड़क से न गुजर पाऊँ। उन्होने घुडकियाँ दिखाना, चीखना–चिल्लाना शुरू कर दिया और जैसे ही मैं उनके निकट से निकला, वे मेरे पैरों की ओर झपटे। जैसे–जैसे वे मेरे नज़दीक आते गये, मैने दौड़ना शुरू कर दिया, मैं जितनी तेजी से दौड़ता था, उतनी ही तेजी से बन्दर मेरी ओर झपटते थे और मुझे काट खाने को दौड़ने लगे। उनसे बचकर निकलना असम्भव–सा लगने लगा। तभी एक परिचित व्यक्ति ने पुकारकर मुझसे कहा,''इन दुष्टों के सामने डटे रहो।'' मैं मुडकर बन्दरों के सामने डट गया। तब वे पीछे हट गये और आखिर में भाग गये। इसी शिक्षा की जीवन भर के लिए गाँठ बाँध लेनी चाहिए। मुसीबतें भी अपने आप भाग जायेंगी....जब हम स्वयं उनके सामने से भागना बन्द कर देंगे।

दो प्रकार का साहस

साहस दो प्रकार का होता है। एक प्रकार है तोप के सामने अड़ जाना। दूसरा प्रकार है आध्यात्मिक विश्वासों पर डटे रहना। एक सम्राट ने भारत पर आक्रमण किया। उसके गुरु ने आदेश दिया था कि वह भारत के कुछ संन्यासियों से अवश्य मिले। बहुत खोज करने के बाद उसे एक सन्त एक शिला पर बैठे हुआ दिखायी पडा। सम्राट ने उससे थोड़ी बात की। वह उस संन्यासी के ज्ञान से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उसने संन्यासी से आग्रह किया कि वह उसके साथ उसके देश को चले। संन्यासी ने कहा,''नहीं'', मैं यहाँ इस जंगल में पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ।''सम्राट ने कहा,''मैं तुम्हें धन–वैभव, पद–प्रतिष्ठा सब कुछ दूँगा। मैं विश्व का सम्राट हूँ।'' इस पर संन्यासी ने उत्तर दिया,''नहीं'', ''मैं इन चीजों का भूखा नहीं।''''तब सम्राट ने धमकी दी।'' ''यदि तुम नहीं चलोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।'' तब यह संन्यासी उपेक्षापूर्वक मुस्कुराया और बोला ''ऐ सम्राट ! यह तुमने सबसे बडी मूर्खतापूर्ण बात कही। तुम मुझे नहीं मार सकते। मुझे न सूर्य सुखा सकता है, न अग्नि जला सकती है, न तलवार काट सकती है; क्योंकि मैं अजन्मा, अमर, नित्य, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् आत्मा हूँ।'' यह है आध्यात्मिक निर्भीकता। दूसरे प्रकार का साहस सिंह या व्याघ्र' का साहस है...।

वीर और उदार बनो

एक बार मैंने एक घटना पढ़ी कि कुछ जहाज दक्षिणी समुद्र द्वीपों में तूफान में घिर गए। इस घटना का एक चित्र 'इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज' नामक समाचारपत्र में छपा भी था। वे सभी जहाज ध्वंस हो गए। केवल एक इंग्लिश जहाज तूफान की टक्कर झेलकर भी बचा रह गया। उस चित्र में दिखाया गया था कि जो लोग समुद्र में डूबने जा रहे थे, वे अपने डूबते जहाज पर खड़े होकर उन साथियों को जिनका जहाज तूफान की चपेट से बच निकला था, हर्षध्वनि द्वारा विदाई दे रहे थे। इतने वीर और उदार बनो। अन्यों को उस गड्ढे में मत खींचो जिसमें तुम स्वयं गिर पड़े हो।

प्रसन्नतापूर्वक सहन करो

यदि तुम संसार का भार उठाने के लिये सचमुच तत्पर हो तो प्रसन्नतापूर्वक उठाओ। किन्तु, हमारे कानों में तुम्हारी कराहों और अभिशापों की ध्वनि नहीं पड़नी चाहिए। हमें अपनी मुसीबतों से डराओ मत, ताकि हम समझने लगें कि हम ही अपनी मुसीबतों के साथ तुमसे ज़्यादा सुखी हैं। जो मनुष्य वास्तव में बोझा उठाता है, वह संसार को धन्यवाद देता हुआ चुपचाप अपने मार्ग पर चलता है। उसके मुख से निन्दा, भर्त्सना या आलोचना का एक शब्द नहीं निकलता। इसलिए नहीं कि कहीं कोई बुराई नहीं है, बल्कि उसने स्वेच्छा से, स्वयंप्रेरणा से उस बोझे को अपने कन्धों पर उठाया है। उद्धारक को अपने मार्ग पर आनन्दपूर्वक चलना चाहिए न कि जिसका उद्धार किया गया।

न तो कष्टों को निमन्त्रण दो और न उनसे भागो। जो आता है, उसे झेलो। किसी चीज से प्रभावित न होना ही मुक्ति है। केवल झेलो ही मत, अलिप्त भी रहो।

'सुख मिलनेवाला है'–बहुत अच्छी बात। उसे किसने मना किया ? दुःख आने वाला है, उसका भी स्वागत। उस बैल की कथा स्मरण रखो। एक मच्छर को एक बैल के सींग पर बैठे हुए बहुत देर बीत गयी। तब उसके दिल में कुछ चुभा और वह बैल से बोला, ''श्रीमान् बैल ! मैं बहुत देर से यहाँ बैठा हुआ हूँ, शायद इससे आप रुष्ट हो गए होंगे। मुझे इसका खेद है। अब मैं चला जाता हूँ ।'' किन्तु बैल ने उत्तर दिया,''नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। तुम अपने पूरे परिवार को ले आओ और मेरे सींग पर रहो। तुम मेरा बिगाड़ ही क्या सकते हो ?'' यही उत्तर हम आपदाओं को भी क्यों न दें ?

भूलें और असफलताएँ : वरदानस्वरूप

विचार ही हमारी मुख्य प्रेरणा शक्ति होते हैं। मस्तिष्क को उच्चतम विचारों से भर दो। प्रतिदिन उनका श्रवण करो, प्रतिमाह उनका चिन्तन करो। असफलताओं की चिन्ता मत करो। वे स्वाभाविक हैं। वे जीवन के सौन्दर्य हैं। उनके बिना जीवन में रह ही क्या जायगा! यदि संघर्ष न हो तो जीवन को पाने का उपयोग ही क्या ? जीवन की

कविता ही तब कहाँ रह जायगी ? संघर्षों की, भूलों की चिन्ता मत करो। मैंने कभी गाय को झूठ बोलते नहीं सुना। किन्तु, वह केवल गाय है। मनुष्य कभी नहीं। अतः, इन असफलताओं की परवाह मत करो। अगर थोड़ा पीछे फिसल ही गए तो क्या हुआ ? आदर्श को पकड़ने के लिए सहस्र बार आगे बढ़ो और यदि तुम सहस्र बार असफल हो जाओ, फिर भी एक नया प्रयास अवश्य करो।

संसार में कोई चीज बिल्कुल ही बुरी नहीं हैं। यदि यहाँ शैतान है तो ईश्वर भी है अन्यथा वह होता ही नहीं।

हमारी भूलों का भी स्थान है। बढ़े चलो। यदि तुम सोचते हो कि तुमने कोई अनुचित कर्म कर दिया है तो भी पीछे मत देखो। क्या तुम्हारा विश्वास है कि यदि तुमने ये गलतियाँ पहले न की होतीं तो तुम वह बन पाते जो आज हो ? तो अपनी गलतियों को धन्यवाद दो। वे अनजाने में वरदान बनकर आयीं। कष्टों को भी धन्यवाद! सुखों को भी धन्यवाद !! तुम्हारा क्या होगा इसकी चिन्ता मत करो। आदर्श पर डटे रहो। आगे बढो। छोटी–छोटी ग़लतियों और चीजों की ओर पीछे मत निहारो। इस जीवन–संग्राम में भूलों का गर्द–गुब्बार उठेगा ही। जो इतने नाजुक हैं कि इस गर्द–गुब्बार को भी नहीं सहन कर सकते, वे पंक्ति के बाहर निकलकर खड़े हो जायँ ।

अपने देवत्व को पहचानो

मैं हिमालय पर यात्रा कर रहा था। लम्बा मार्ग हमारे सामने फैला पडा था। हम धनहीन भिक्षुकों को ढोने के लिए कौन मिल पाता ? अतः, हमें पूरी यात्रा पैदल ही पार करनी थी। हमारे साथ एक वृद्ध पुरुष भी थे। सैकड़ो मीलों तक वह मार्ग ऊपर चढता था, नीचे उतरता था। जब उन वृद्ध भिक्षु ने यह सब देखा तो वे बोले, ''ओह, मैं कैसे मार्ग पार कर पाऊँगा ? मैं अब अधिक नहीं चल सकता। मेरा दम टूट रहा है।'' मैंने उनसे कहा,''यह सड़क जो आपके पैरों के नीचे है, वही है जिसको आपने अब तक पार किया है और यही वह सड़क है जो आप अपने सामने देख रहे हो। यह भी शीघ्र ही तुम्हारे पैरों के नीचे आयेगी।'' सर्वोत्तम वस्तुएँ भी तुम्हारे पैरों के नीचे है; क्योंकि तुम दिव्य नक्षत्र हो। ये सब चीजें तुम्हारे पैरों के नीचे हैं। यदि तुम चाहो तो नक्षत्रों को भी निगल सकते हो। यह है तुम्हारा वास्तविक स्वरूप। बलवान् बनो, समस्त अन्धविश्वासों से ऊपर उठो और मुक्त हो जाओ।

मौन व अविरत कार्य

बडा स्थान पाकर कोई भी बड़ा बन सकता है। रंगमंच के लट्टुओं के प्रकाश में कायर भी वीर बन सकता है। संसार उसे देखेगा। किसका हृदय नहीं उछल पडेगा ? जब तक अपने से सर्वोत्तम बन पड़ता है, तब तक किसकी नाडियों की गति तीव्र नहीं रहती, किन्तु उत्तरोत्तर मुझे उस कीड़े में सच्ची महानता के दर्शन हो रहे हैं जो अपना

कर्तव्यपालन चुपचाप एवं अविराम गति से प्रतिक्षण, प्रतिपल करता रहता है। एक प्राचीन कथा इस प्रकार है कि एक नन्हीं-सी गिलहरी बार-बार रेत में लोटती थी और दौड़कर सेतु की ओर जाती थी, वहाँ अपना शरीर झाड़कर फिर रेत में आ जाती थी। इस प्रकार वह भी भगवान् राम के सेतु-निर्माण यज्ञ में अपना अकिंचन योग दे रही थी। बन्दर उसे देखकर हँस पड़े ; क्योंकि वे पूरे पहाड़, पूरे जंगल, रेत के विशाल ढेर सेतु के लिए उठा-उठा कर ला रहे थे। अतः, वे उस नन्हीं-सी गिलहरी पर हँसे जो रेत में लोटकर अपने शरीर पर लगे रेत को पुल पर झाड़ आती थी। किन्तु राम ने जब उसे देखा तो उन्होंने कहा-''धन्य है यह नन्हीं सी गिलहरी। वह अपनी शक्ति से अधिक कार्य कर रही है। अतः, वह भी उतनी ही महान् है जितना तुममें से अन्य कोई।'' तब उन्होंने गिलहरी की पीठ पर स्नेहपूर्वक थपकी दी और राम की अंगुलियों के निशान आज भी गिलहरी की पीठ पर देखे जा सकते हैं।

प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है

प्रत्येक कर्त्तव्य पावन हैऔर कर्त्तव्यनिष्ठा ईश्वरोपासना का सर्वोत्तम प्रकार है। जो कर्त्तव्य हमारे बिल्कुल समीप है, जो कर्त्तव्य हमारे हाथों में है, उसे अच्छी प्रकार करके हम स्वयं को ही बलवान् करते हैं और इस प्रकार एक-एक पग पर अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए हम उस अवस्था में पहुँच जायेंगे जब हमें जीवन तथा समाज में सबसे जटिल और सम्मानित कर्त्तव्यों के पालन करने का सुअवसर भी प्राप्त होगा।

हम उस स्थान पर पहुँच जायेंगे जिसके हम योग्य हैं। प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान निश्चित होता है। यदि किसी में दूसरे से अधिक क्षमता है तो संसार उसका भी पता लगा लेगा। इस विश्व-व्यवस्था में ऐसा ही होता आया है। अतः, असन्तुष्ट रहने से कोई लाभ नहीं। कोई धनी व्यक्ति दुष्ट हो सकता है, किन्तु उसमें कुछ गुण भी अवश्य होंगे, जिन्होंने उसे धनवान् बनाया। यदि किसी दूसरे व्यक्ति में भी वे ही गुण हों तो वह भी धनी बन जायगा। तब झगड़ा करने और शिकायत करने से लाभ ही क्या ? उससे हमें अच्छी बातों की ओर बढ़ने में सहायता नहीं मिलेगी।

प्रत्येक कर्त्तव्य में रस लो ; उसे कोसो मत

जो अपने हिस्से में आये हुए छोटे-से काम को करते समय भी बुदबुदाता है, वह हरेक काम में बुदबुदायेगा। सदैव बुदबुदाते हुए वह एक दुःखपूर्ण जीवन बितायेगा और प्रत्येक कार्य में असफल होगा। किन्तु, वह व्यक्ति जो अपने कर्त्तव्य को पूरी शक्ति के साथ करता रहेगा, पहिये में अपना कन्धा लगाये रहेगा, अन्त में वह अवश्य ही फल पायेगा और अधिकाधिक उत्तरदायित्व निभाने का अवसर उसे मिलेगा।

फल के प्रति आसक्ति रखनेवाला कार्यकर्ता ही अपनी पूरी शक्ति के साथ उत्तरदायित्वों को निभाने में हिचकिचाहट दिखाता है। निरासक्त कार्यकर्ता के लिए सब

कर्त्तव्य बराबर हैं, अच्छे हैं। प्रत्येक कर्त्तव्य उसके लिए स्वार्थ और विषयलोलुपता का उन्मूलन करने के लिए एक सुन्दर अस्त्र बनकर आता है, उसके द्वारा वह आत्मा की मुक्ति प्राप्त करता है।

असन्तोषी को सब कर्त्तव्य अरुचिकर लगते हैं। वह कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकेगा और उसका सम्पूर्ण जीवन असफलता की कहानी बनकर रहेगा। हम कर्म करते चलें, जो कार्य हमारे हिस्से में आये उसे करें और कार्य के चक' में अपना कन्धा लगाये रहें, तब हमें उस ज्योतिर्मय के दर्शन होना निश्चित है।

कोई कार्य तुच्छ नहीं। यदि मनपसन्द कार्य मिल जाय तो मूर्ख भी उसे पूरा कर सकता है, किन्तु बुद्धिमान् पुरुष वही है जो प्रत्येक कार्य को अपने लिये रुचिकर बना ले।

इस संसार में प्रत्येक वस्तु वटवृक्ष के बीज के समान है, जो यद्यपि देखने में तो सरसों के दाने के समान लघु दीख पडता है, तथापि अपने अन्दर विशाल वटवृक्ष को छिपाये हुए है। सचमुच महान् वही है जो यह बात परखकर प्रत्येक कार्य को महान् बनाने में सफलता प्राप्त कर दिखाये।

आत्मनिरीक्षण करो, अन्य को दोष मत दो

हमें यह जान लेना चाहिए कि हम तब तक कुछ नहीं बन सकते, जब तक हम स्वयं ही उसके लिए तैयार न हों। जब तक शरीर की तैयारी न हो, कोई रोग पास नहीं फटक सकता। रोग का आगमन केवल कीटाणुओं पर ही नहीं निर्भर करता है, अपितु शरीर में उनके लिए विद्यमान अनुकूलता पर भी निर्भर करता है। हम जिसके योग्य हैं, वही हमें मिलता है । हम अपना घमण्ड छोड़ें और इस बात को समझ लें कि अकारण दुःख कभी नहीं आता। कोई भी आघात बिना उसका पात्र बने नहीं लगता। कोई बुराई ऐसी नहीं थी, जिसके लिये मैंने अपने हाथों रास्ता तैयार न किया हो, यह हमें समझ लेना चाहिए।

अपना विश्लेषण करो तो तुम्हें पता लग जायगा कि तुम्हें प्रत्येक आघात इसलिए मिला क्योंकि तुमने स्वयं को उसके लिए तैयार किया। आधा कार्य तुमने किया, शेष आधा बाह्य जगत् ने पूरा कर दिया। इस तरह तुम्हें आघात मिला। यह हानि होने पर हम विनम्र हो सकेंगे। साथ ही, इस आत्मविश्लेषण में से आशा का स्वर भी सुनाई देगा। वह स्वर है :– बाह्य जगत् पर भले ही मेरा कोई वश न चलता हो, किन्तु अपने आन्तरिक जगत् पर, जो मेरे अत्यन्त निकट है, मेरे अन्दर ही है, तो मेरा नियन्त्रण चल सकता है। यदि किसी असफलता के लिए इन दोनों का संयोग होना आवश्यक है, यदि मुझे आघात लगाने के लिए दोनों का मिलन होना अनिवार्य है तो मैं अपने अधिकार के जगत् को इस कार्य में योग नहीं देने दूँगा। तब भला आघात क्यों आकर लग सकेगा ? यदि मैं सच्चा आत्मनियन्त्रण पा लूँ तो मुझे आघात कभी नहीं लगेगा।''

अतएव, अपनी भूलों के लिए किसी को दोष मत दो, अपने पैरों पर खड़े होओ, और सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर लो। कहो,''यह विपद् जिसे मैं झेल रहा हूँ मेरी अपनी करनी का फल है। और, इसी से सिद्ध है कि इसे मैं स्वयं ही दूर करूँगा। जिसकी रचना मैंने की, उसका विनाश मैं ही कर पाऊँगा।'' अतः, उत्तिष्ठत ! निर्भीक बनो, समर्थ बनो। सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर सँभालो और समझ लो कि तुम ही अपने भाग्य विधाता हो। जितनी शक्ति और सहायता तुम्हें चाहिए, वह सब तुम्हारे अन्दर ही है। अतः, अपना भविष्य स्वयं बनाओ। ''मृत अतीत को दफना दो'', अनन्त भविष्य तुम्हारे सामने है। सदैव स्मरण रखो कि प्रत्येक शब्द, विचार और कृति तुम्हारे भाग्य का निर्माण करता है। जिस प्रकार बुरे कर्म और विचार व्याघ्र के समान तुम्हारे ऊपर झपटने को तैयार हैं, उसी प्रकार एक आशा की किरण भी है कि अच्छे कर्म और विचार सहस्रों देवदूतों की शक्ति से तुम्हारी सदा-सर्वदा रक्षा करने को भी तत्पर हैं।

स्वयं अपने भाग्य-निर्माता

बिना अधिकारी बने कोई कुछ नहीं पा सकता। यही सनातन नियम है। कभी-कभी हमें ऐसा लगता होगा कि शायद यह सही नहीं है, किन्तु अन्ततोगत्वा हमें इसका विश्वास होकर रहेगा। कोई व्यक्ति जीवन भर धनी बनने के लिए छटपटाता रहे, उसके लिये सहस्रों लोगों को ठगे, किन्तु अन्त में एक दिन वह देखता है कि शायद वह धनवान् बनने के योग्य ही नहीं था और अपना सम्पूर्ण जीवन उसे भार या विपदा दिखाई देता है। हम भले ही अपने इन्द्रिय-सुख के लिए अनेकों साधनों को जमा करते रहें, किन्तु उनमें से केवल वही हमारा है जिसे हमने अर्जित किया है। एक मूर्ख संसार की समस्त किताबें खरीद डाले और वे सब उसके पुस्तकालय में सजी रहें, किन्तु वह उनमें से केवल उतनी ही पढ पायगा जितने का वह अधिकारी है और यह अधिकार कर्म द्वारा उत्पन्न होता है ।

हमारा कर्म निर्णय करता है कि हमारा कितना अधिकार है और हम कितना आत्मसात् कर सकते हैं। स्वनिर्माण की शक्ति हमारे पास है। हम आज जो कुछ हैं यदि यह हमारे पिछले कर्मो का परिणाम है तो इससे निश्चित तर्क निकलता है कि जो हम भविष्य में कुछ बनना चाहते हैं, वह हमारे वर्तमान कर्मो का परिणाम होगा। अतः, हमें विचार करना चाहिए कि हम कैसे कर्म करें।

सहायता भीतर से मिलेगी

हम रेशम के कीड़ों के तुल्य हैं। हम अपनी देह में से ही धागा कातते हैं और अपने चारों ओर एक कोश बुन लेते हैं और फिर कुछ समय पश्चात् उसके अन्दर बन्दी हो जाते हैं, किन्तु यह सदा नहीं रहेगा। उस कोश के भीतर रहकर हम आध्यात्मिक साक्षात्कार कर लेंगे और तितली के समान मुक्त होकर बाहर निकल आयेंगे। कर्म का

यह ताना–बाना सबने अपने चारों ओर पूरा कर लिया है। अज्ञानवश हम समझते हैं कि हम बन्धन में पड़े हैं और तब सहायता के लिये चीखते–पुकारते हैं। किन्तु, सहायता बाहर से नहीं आती। वह हमारे अन्दर से ही आयेगी। चाहे तुम विश्व के समस्त देवताओं का नाम लेकर चिल्लाओ, पुकारो। मैं भी वर्षो तक चिल्लाया। अन्त में मैंने पाया कि मुझे सहायता मिली, किन्तु वह मेरे अन्दर से आयी। जो कुछ मैंने भूलें की थीं, उनका मुझे निराकरण करना पड़ा। यही एकमेव मार्ग है। मुझे उस जाल को काटना पड़ा, जो मैंने अपने चारों ओर बुन लिया था और उसे काटने की शक्ति अपने अन्दर ही विद्यमान है। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे विगत जीवन की एक भी अच्छी या बुरी कामना व्यर्थ नहीं गई और आज मैं जो कुछ भी हूँ, अपने सम्पूर्ण अतीत (भले या बुरे) का ही परिणाम हूँ। मैंने जीवन में अनेक भूलें की हैं, किन्तु ध्यान दो, मुझे निश्चय है कि उनमें से प्रत्येक भूल को किये बिना मैं वह नहीं बन पाता, जो आज हूँ और इसीलिए मुझे पूर्ण सन्तोष है कि मैंने वे भूलें की। मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नहीं कि तुम घर वापस जाकर जान–बूझकर ग़लतियाँ करना शुरू कर दो। मेरे कथन का यह ग़लत अर्थ मत लगाओ। किन्तु, जो भूलें तुमसे हो चुकी हैं, उनके लिए खिन्न मत होओ। स्मरण रखो कि अन्त में सब कुछ ठीक हो जायगा। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य हो ही नहीं सकता ; क्योंकि हमारी प्रकृति ही शुद्ध–बुद्ध है और वह प्रकृति नष्ट नहीं की जा सकती। हमारी मूल प्रकृति सदा वही बनी रहती है।

सच्चरित्र का निर्माण

मनुष्य मानो एक केन्द्र है जो अपनी ओर चारों ओर से ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों को आकर्षित कर रहा है। इस केन्द्र में से समस्त शक्तियाँ समाहित होकर पुनरपि एक शक्ति–प्रवाह के रूप में वहाँ से वापस लौट रही हैं।

पाप–पुण्य, दुःख–सुख सब उसकी ओर दौड़ रहे हैं और उससे चिपट रहे हैं। उन्हीं में से वह प्रवृत्तियों की उस प्रबल धारा का निर्माण करता है, जिसे चरित्र कहते है तथा उसे प्रकाशित करता है। जिस प्रकार उसमें सब कुछ आकर्षित करने की शक्ति विद्यमान है, उसी प्रकार उसे विकीर्ण करने की शक्ति भी विद्यमान है।

यदि कोई मनुष्य लगातार अशुभ बातें भी सुने, अशुभ चिन्तन करे, अशुभ कर्म करे तो उसका अन्तःकरण बुरे संस्कारों से मलीन हो जायगा। वे, अनजाने में ही उसके समस्त विचारों और कार्यों को प्रभावित करेंगे। वास्तव में, ये कुसंस्कार सदैव कार्यशील बने रहते हैं और उनका परिणाम होता है केवल अनिष्ट कर्म और भला मनुष्य भी बुरा मनुष्य बन जाता है। वह उसे रोक नहीं सकता। ये समस्त संस्कार एकत्रित होकर उसके अन्दर बुरे कर्मों के लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न कर देंगे। वह इन संस्कारों के हाथ की कठपुतली बन जायगा और वे उसे निरन्तर दुष्कर्म की ओर ढकेलेंगे।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य शुभ चिन्तन करता है, शुभ कर्म करता है, तो उनके संस्कारों का संचय शुभ होगा। ये शुभ संस्कार ठीक उसी प्रकार उसे उसकी इच्छा के विपरीत भी सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करेंगे। जब मनुष्य अत्यधिक शुभ कर्म एवं शुभ चिन्तन कर चुका होता है, तो उसमें अपनी इच्छा के विपरीत भी शुभ कर्म करने की अप्रतिहत प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यदि वह पाप कर्म करना चाहे तो भी उसका मन उसकी प्रवृत्तियों से बँधा होने के कारण, उसे वह पापकर्म करने की अनुमति नहीं देगा। उसकी प्रवृत्तियाँ उसे वापस लौटा लायेंगी; क्योंकि वह पूर्णतया शुभ प्रवृत्तियों के वशीभूत है। जब ऐसी स्थिति पहुँच जाय, तभी जानना चाहिए कि मनुष्य में सच्चरित्र दृढ़मूल हो गया है।

जब कोई मनुष्य पिआनो पर कोई धुन बजाना सीखता है तो प्रारम्भ में वह प्रत्येक पर्दे पर अपनी अंगुलियाँ समझ-समझ कर रखता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि अंगुलियों का चलना उसका स्वभाव न बन जाय। बाद में वह उस धुन को प्रत्येक पर्दे की ओर ध्यान दिये बिना ही सरलतापूर्वक बजा लेता है। इसी प्रकार, हम अपने बारे में भी देख सकते हैं कि हमारी वर्तमान प्रवृत्तियाँ हमारे पिछले विचारपूर्वक किये गये कर्मों का परिणाम है।

आत्म-संयम की शक्तियाँ

जब हम अपनी भावनाओं को खुला छोड़ देते हैं, तब हम अपनी बहुत-सी शक्ति नष्ट करते हैं। हमारे स्नायु क्षीण होते हैं, मन चञ्चल रहता है और बहुत थोड़ा कार्य हो पाता है। जो शक्ति कार्य करने में व्यय होनी चाहिए थी, वह निरर्थक ही भावना के रूप में नष्ट हो गई, जिसका कोई उपयोग नहीं हुआ। जिस समय मन पूर्णतया स्थिर एवं एकाग्र होता है, उस समय उसकी पूरी शक्ति शुभ कार्य करने में व्यय होती है। यदि तुम संसार के महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढो, तो तुम्हें पता चलेगा कि वे अद्भुत स्थिर व्यक्ति थे। कोई भी वस्तु मानो उनके सन्तुलन को भंग नहीं कर सकती थी। यही कारण है कि जिस व्यक्ति को कोई क्रुद्ध नहीं बना सकता, वह बहुत अधिक कार्य कर जाता है। जो मनुष्य क्रोध, ईर्ष्या या अन्य किसी विकार का दास बन जाता है, वह कार्य नही कर सकता, वह अपने स्वयं के खण्ड-खण्ड कर डालता है और कोई ठोस कार्य नही करता। शान्त, क्षमाशील, सन्तुलित एवं स्थिर मन ही सबसे अधिक कार्य कर पाता है।

विकारों की प्रत्येक लहर पर विजय से तुम्हारे सामर्थ्य में वृद्धि होती है। अतएव क्रोध के बदले क्रोध न करना भी अन्य नैतिक कार्यों के समान ही उपादेय नीति है। ईसा ने कहा था,''बुराई का प्रतिरोध मत करो।'' हम इस सन्देश को तब तक नहीं समझ सकेंगे, जब तक हम यह न खोज लें कि यह केवल नैतिक दृष्टि से ही उचित नहीं, अपितु सर्वाधिक फलदायी नीति भी है क्योंकि क्रोध को अपनाने वाले की अपनी शक्ति

का ही ह्रास होता है । तुम्हें अपने मन को क्रोध और घृणा आदि की विकार-तरंगों के वशीभूत नहीं होने देना चाहिए।

एक चार घोडों की बग्घी पहाड़ी के ढाल पर अनियन्त्रित हो लुढ़क जाय अथवा सारथी उसके घोड़ों को नियन्त्रण में रखे । शक्ति की किसमें अधिक अभिव्यक्ति है- घोड़ों को खुली छूट देने में या उन पर नियन्त्रण रखने में ? एक बम का गोला हवा में दूर तक उठता जाता है और अन्त में धरती पर गिर पड़ता है। दूसरा गोला मार्ग में दीवार से टकरा जाने के कारण वहीं रह गया, किन्तु उन दोनो की टक्कर से अत्यधिक ताप शक्ति पैदा होती है। स्वार्थ हेतु को लेकर जो शक्ति तुमसे बाहर जाती है, उसमें तुम्हारे पास वापस कुछ नहीं लौटता, किन्तु यदि उसे संयमित कर लिया गया होता, तो काफी वर्द्धित होकर लौटती।

इस आत्म-नियन्त्रण के द्वारा वह प्रबल इच्छाशक्ति व चारित्र्य पैदा होते हैं, जिनमें से ईसा या बुद्ध पैदा होते हैं।

यदि क्रोध की एक बड़ी लहर मन में उठे, तो उस पर हम कैसे नियन्त्रण करें ? ठीक उसकी विरोधी लहर उत्पन्न कर; अर्थात् प्रेम भाव को उद्दीप्त करो। कभी कोई स्त्री अपने पति से बहुत नाराज हो जाती है, और यदि उसी स्थिति में नन्हा शिशु वहाँ आ जाय तो माँ उस बच्चे को प्रेम से चूम लेती है, पुरानी लहर मर जाती है और बच्चे के लिए प्रेम की एक नयी लहर जन्म ले लेती है। वह दूसरी लहर को दबा देती है। प्रेम क्रोध का प्रतिपक्षी है। इसी प्रकार, जब मन में चोरी का भाव उठे, तब चोरी न करने के भाव का चिन्तन करना चाहिए। जब उपहार पाने की कामना मन में जगे, तब उसे उसके विरोधी विचार से दबा दो।

आदर्श पुरुष वह है जो अधिकतम नीरवता और एकान्त में भी तीव्र क्रियाशीलता प्रकट करता है और जो तीव्र क्रियाशीलता के बीच भी मरुस्थल की निस्तब्धता और एकान्तता का अनुभव करता है। उसने संयम का रहस्य सीख लिया है और अपने ऊपर नियन्त्रण पा लिया है। किसी बडे नगर की कोलाहलपूर्ण सड़कों पर घूमते हुए भी उसका मन इतना शान्त रहता है, जैसे मानो वह ऐसी कन्दरा में बैठा हो जहाँ ध्वनि भी उसके निकट नहीं पहुँच सकती, तब भी इस पूरे समय में अति क्रियाशील रहता है। यही कर्मयोग का आदर्श है और यदि तुम यह आदर्श प्राप्त कर सको तो समझ लो कि तुमने कर्म का रहस्य जान लिया।

सच्चे विचारों की शक्ति

गौतम बुद्ध के जीवन में हम उन्हें सदैव यह कहते हुए पाते हैं कि वे पच्चीसवें बुद्ध हैं। उनसे पूर्वकालीन चौबीस बुद्ध इतिहास को अज्ञात है, यद्यपि इतिहास को ज्ञात बुद्ध ने अपने जीवन को उन चौबीस बुद्धों द्वारा निर्मित नींव पर ही खड़ा किया होगा।

महानतम पुरुष शान्त, मौन और अज्ञात रहते हैं। वे लोग ही वस्तुतः विचारों की शक्ति को जानते हैं। उन्हें विश्वास रहता है कि यदि वे किसी गुफ़ा में प्रवेश कर द्वार बन्द कर लें और केवल पाँच सच्चे विचारों का चिन्तन कर अपनी देह को त्याग दें, तो उनके ये पाँचों विचार अनन्त काल तक जीवित रहेंगे। सच, ऐसे विचार पर्वतों को भेदकर, समुद्रों को लाँघकर संसार भर में व्याप्त हो जायेंगे। वे मानव-हृदयों और मस्तिष्कों में गहरे प्रवेश कर जायेंगे। सहस्रों नर-नारियों को कर्म-चेतना से भर देंगे। और, वे उन विचारों को मानव-जीवन के क्रियाकलापों में व्यावहारिक अभिव्यक्ति करके दिखायेंगे।

तुम स्वयं ऋषि बनो

तुम्हें केवल पुराने ऋषियों के उपदेश को सीखने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वे ऋषि जा चुके और उनके साथ ही उनके मत भी। तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी उसी प्रकार मनुष्य हो, जिस प्रकार अब तक उत्पन्न हुए समस्त महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार भी, मनुष्य थे। केवल ग्रन्थ-पाठ से क्या बनेगा ? केवल ध्यान-धारणा भी क्या कर पायगी ? मन्त्र-तन्त्र भी कल्याण नहीं कर सकेंगे। तुम्हें अपने पैरों पर ही खड़े होना होगा।

शिक्षित युवकों को संगठित करो

शिक्षित युवकों में कार्य करो, उन्हें एकत्र लाओ और संगठित करो। महान् त्याग के द्वारा ही महान् कार्य सम्भव हैं. . . करो, मेरी योजना, मेरे विचारों को क्रियान्वित करो। मेरे वीर, श्रेष्ठ, उदात्त बन्धुओं ! अपने कन्धों को कार्यचक्र में लगा दो, कार्यचक्र पर जुट जाओ। मत ठहरो, पीछे मत देखो – न नाम के लिए, न यश के लिए और न ऐसी ही किसी अन्य निरर्थक वस्तु के लिए। व्यक्तिगत अहंमन्यता को एक ओर फेंक दो और कार्य करो। स्मरण रखो,''घास के अनेक तिनकों को जोड़कर जो रस्सी बनती है उससे एक उन्मत्त हाथी को भी बाँधा जा सकता है।''

श्री रामकृष्ण से मेरी प्रार्थना

अब मैं सार्वभौमिक समन्वय के सन्देश के प्रदाता जगद्गुरु श्री रामकृष्ण से प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वयं को तुम्हारे अन्तःकरण में प्रकाशित करें, ताकि तुम समस्त ऐहिक कामनाओं से ऊपर उठकर साहसपूर्ण हृदय से अन्यों को भी माया-मोह के भीषण भँवर से बाहर निकाल सको।

तुम सदैव शौर्य से सम्पन्न रहो। केवल वीर ही मुक्ति को सरलतापूर्वक पा सकता है, न कि कायर। कमर कसो ओ वीरों ! तुम्हारे सामने शत्रु खड़ा है– यह माया-मोह की क्रूर सेना। इसमें तनिक सन्देह नहीं कि समस्त महान् सफलताओं के मार्ग नाना बाधाओं से भरे हैं, किन्तु तब भी तुम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिकतम प्रयत्न करते रहो।

ओ वीर आत्माओं ! आगे बढ़ो, आगे बढ़ो ! उन्हें मुक्त कराने के लिए जो ज़ंजीरों से जकड़े हुए हैं, उनका बोझा हल्का करने के लिए जो दुःख के भार से लदे हैं, उन हृदयों को आलोकित करने के लिए जो अज्ञान की गहन तमिस्रा में डूबे हुए हैं। सुनो ! वेदान्त डंके की चोट पर घोषणा कर रहा है 'अभीः' (निर्भय बनो) ईश्वर करे, यह पवित्र स्वर धरती के समस्त प्राणियों के हृदयों की ग्रन्थियाँ खोलने में समर्थ हो।

ओ हिन्दुओ ! मोहनिद्रा को त्यागो

हम प्रत्येक आत्मा को आह्वान करें, उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! प्राप्य वरान्निबोधत !!! अर्थात् उठो, जागो और जब तक लक्ष्य प्राप्त न कर लो, कहीं मत ठहरो। उठो ! जागो !! दौर्बल्य के मोहजाल से निकलो, कोई वास्तव में दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापी है। खड़े हो, स्वयं को झकझोरो, अपने अन्दर व्याप्त ईश्वर का आह्वान करो। उसकी सत्ता को अस्वीकार मत करो। हमारी जाति पर बहुत अधिक निष्क्रियता, बहुत अधिक दुर्बलता और बहुत अधिक मोहजाल छाया रहा है और अब भी है।

ऐ हिन्दुओ ! इस मोहजाल को उतार फेंको। इससे मुक्त होने का मार्ग वही है जो तुम्हारे पवित्र शास्त्रों में वर्णित है ।

अपने सच्चे रूप को स्वयं समझो और अन्य प्रत्येक को सिखाओ। सुप्त आत्मा को जगाओ और फिर देखो वह कैसे जगती है। एक बार जहाँ यह सुप्त आत्मा अपने सच्चे स्वरूप को पहचान कर कार्यक्षेत्र में उतरी कि तुम्हारे पास प्रभुता, कीर्ति, शुचिता, ऋजुता और अन्य जो कुछ भी श्रेष्ठ गुण हैं, सब अपने आप चले आयेंगे।

पुनर्युवा उज्ज्वल भारत

मैं भविष्य को नहीं देखता, न ही उसे जानने की चिन्ता करता हूँ। किन्तु, एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ, ''यह प्राचीन मातृभूमि एक बार पुनः जाग गई है और अपने सिंहासन पर आसीन है – पहले से कहीं अधिक गौरव एवं वैभव से प्रदीप्त। शान्ति और मंगलमय स्वर में उसकी पुनःप्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो।''

कर्मठता की आवश्यकता

इस समय देश को रजोगुण की आवश्यकता है। जिन लोगों को तुम सत्वगुणी समझ रहे हो, उनमें से पन्द्रह आने लोग तो घोर तमोगुणी हैं। एक आना सतोगुणी मनुष्य मिल जाये तो बहुत है। इस समय प्रबल रजोगुण की ताण्डव उद्दीपना चाहिए। देश के लोगों को उद्यमशील बना डाला होगा, जगाना होगा और कर्म-तत्पर बनाना होगा। - **स्वामी विवेकानन्द**

संगठन सूत्र

एक बार उन्होंने (स्वामीजी ने) मेरी दादीजी से कहा कि ''मेरे जीवन का सब से बडा आकर्षण अमेरिका में है।''मेरी दादी ने थोडा चुटकी काटने के लिए उनसे पूछा- ''ऐसी वह कौन है, स्वामी ?'' वह ठहाका मारकर हँस पड़े और ''बोले,'' ओह ! वह कोई स्त्री नहीं है, बल्कि संगठन है।'' उन्होंने समझाया कि किस प्रकार रामकृष्ण परमहंस के शिष्य अकेले निकल पडते हैं और जब वे किसी ग्राम के निकट पहुँचते हैं तो चुपचाप एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं, उनकी प्रतीक्षा में, जो अपनी आपत्तियों में उनकी सलाह माँगने आते हैं। ''किन्तु, मैंने अमेरिका में देखा कि संगठित प्रयास के द्वारा कितना अधिक कार्य किया जा सकता है।'' परन्तु, तब तक वे यह निश्चित नहीं कर पाये थे कि संगठन का कौन-सा प्रकार भारतीय स्वभाव के लिए पूर्णतया उपयुक्त होगा। वे इस बारे में बहुत चिन्तन-मनन और अध्ययन कर रहे थे कि पाश्चात्य जगत् में जो कुछ वे अच्छा समझते हैं उसे अपने देशवासियों के अधिकतम हित की दृष्टि से कैसे उपयुक्त बनायें।

– कु. कॉर्नर

हिन्दुओं का संगठन

ऐसा संगठन जो हिन्दुओं को पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव सिखा सके, परमावश्यक है। मेरे कार्य की सराहना करने के लिए कलकत्ते में जो सभा हुई उसमें पाँच हज़ार लोग आये। ऐसे ही अन्य स्थानों पर भी सैकड़ों की संख्या में लोग आये। बहुत अच्छी बात है ! किन्तु, यदि तुम उनमें से प्रत्येक से एक आना देने को कहो, तो क्या वे ऐसा करेंगे ? हमारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय चारित्र्य बच्चों के समान परावलम्बी बन गया है। सब लोग खाने का स्वाद तो लेना चाहते हैं, मगर वह उनके मुँह के पास पहुँच जाय तभी। कुछ तो यहाँ तक चाहते हैं कि वह उनके गले के नीचे उतार दिया जाय। तुम्हें जीने का कोई अधिकार नहीं, यदि तुम अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सकते हो।

भारत में तीन लोग मिल-जुलकर पाँच मिनट तक कार्य नहीं करते। प्रत्येक सत्ता पाने के लिए संघर्ष करता है और फलस्वरूप आगे जाकर संगठन संकट में पड जाता है। हे ईश्वर ! हे प्रभो ! हम ईर्ष्या न करना कब सीख पायेंगे ? ऐसे राष्ट्र में, ऐसे व्यक्तियों का, जो मत-भिन्नताओं के रहते हुए भी अमर स्नेह के सूत्र में ग्रन्थित हों, संगठन तैयार करना क्या आश्चर्य की बात नहीं ? यह संगठन बढ़ता जायगा। अद्भुत विशाल हृदयता से संयुक्त शाश्वत शक्ति एवं प्रगति का यह भाव सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो जाना चाहिए। इस गुलाम राष्ट्र को उत्तराधिकारी के रूप में उपलब्ध भयंकर अज्ञान, जातिभेद, पोंगापन्थी और ईर्ष्या के बावजूद यह भाव सम्पूर्ण राष्ट्र में विद्युत्चैतन्य भी देगा उसे समाज के रोम-रोम में भर देना चाहिए।

कार्य की तीन अवस्थाएँ

प्रत्येक कार्य को तीन अवस्थाओं से गुजरना पडता है- उपहास, विरोध और अन्त में स्वीकृति।

ऐसे प्रत्येक मनुष्य के बारे में जो अपने समय से बहुत आगे की सोचता है, भ्रान्ति उत्पन्न होना निश्चित है। अतः, विरोध और अत्याचारों का स्वागतकरना होगा। केवल मुझे दृढ और शुद्ध होना चाहिए तथा ईश्वर में अगाध श्रद्धा रखनी चाहिए। फिर, ये सब अपने आप ठीक हो जायेंगे।

प्रसिद्धि, लोलुपता एवं निर्माण-कार्य साथ नहीं चलते

कभी किसी ने समाज को प्रसन्न रखने और साथ ही महान् कार्य करने में सफलता नहीं पाई। किसी को केवल अपनी अन्तरात्मा के आदेशों का पालन करते रहना चाहिए और यदि वह आदेश सही और शुभ है तो समाज को उसका अनुसरण करना ही होगा, भले ही वह उसकी मृत्यु के शताब्दियों बाद करे। हम मन, बुद्धि और शरीर से अपने कार्य में जुट जायँ। जब तक हम केवल एक और केवल एक ही विचार के लिए अन्य सब कुछ त्यागने के लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक हमें कभी प्रकाश का दर्शन नहीं होगा, कभी नहीं।

जो लोग मानवता की सच्ची सेवा करना चाहते हैं उन्हें अपने सुख-दुःख, कीर्ति-प्रतिष्ठा तथा अन्य समस्त स्वार्थों को गठरी में बाँधकर समुद्र में फेंक देना चाहिए और तब भगवान् के चरणों में आना चाहिए, यही समस्त महापुरुषों ने कहा और किया।

पूर्ण आज्ञाकारिता

जो आज्ञापालन करना जानता है, वही आज्ञा देना भी जान सकता है। पहले आज्ञापालन सीखो। इन समस्त देशों में स्वतन्त्रता की तीव्र भावना के साथ ही आज्ञापालन की भावना भी उतनी ही तीव्र है। हम सभी अपने-अपने को महत्त्वपूर्ण समझते हैं, जिसके कारण कोई कार्य नहीं हो पाता। महान् उद्यम, असीम उत्साह, प्रचण्ड शक्ति और इन सबसे ऊपर पूर्ण आज्ञाकारिता केवल इन्हीं गुणों के सहारे व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय पुनरुत्थान सम्भव है। इन गुणों का हममें सर्वथा अभाव है।

यहाँ प्रत्येक नेता बनना चाहता है, आज्ञापालन करना कोई नहीं जानता। महान् कार्यों को करने में नेता की आज्ञाओं को आँख मूँद कर पालन करना होता है। यदि मेरे गुरुभाई अभी मुझसे कहें कि मुझे अपने जीवन का शेष भाग मठ की नालियाँ साफ करने में बिताना है तो निश्चय जानो कि मैं इस आज्ञा का बिना किसी विरोध के पालन करूँगा। केवल वही महान् सेनापति हो सकता है जो सर्वजनहिताय प्रत्येक आज्ञा को बिना ननु-नच (छोटी-मोटी आपत्ति) किये पालन करना जानता है।

आज्ञापालन के गुण का विकास तो करो, किन्तु अपनी आत्मश्रद्धा को मत खोओ। अपने वरिष्ठों की आज्ञापालन के बिना एकसूत्रता सम्भव नहीं। व्यक्तिगत शक्तियों के ऐसे केन्द्रीकरण के बिना कोई भी महान् कार्य नहीं किया जा सकता।

सहयोगियों के प्रति व्यवहार

तुम्हें किसी की योजना का निरादर कर उसे निरुत्साहित नहीं करना चाहिए। आलोचना को बिलकुल छोड़ दो। सबकी तब तक सहायता करते रहो, जब तक तुम्हें दिखाई दे कि वे ठीक कर रहे हैं और जब कभी वे गलत पग उठाते दिखाई दें तो उनकी भूलों को सौम्यतापूर्वक उनकी दृष्टि में लाओ। एक दूसरे की आलोचना ही समस्त उपद्रवों की जड़ है। वही संगठनों के विघटन का मुख्य कारण बनती है।

तुम्हारे समस्त कार्यों की सफलता पूर्णतया तुम्हारे पारस्परिक स्नेह पर निर्भर है। जब तक ईर्ष्या, द्वेष एवं अहंवादिता कायम है, तब तक कोई भला नहीं होने वाला है।

अपने बन्धुओं के विचारों का आदर करो और सदैव सद्भाव स्थापित करने का यत्न करो। यही सफलता का रहस्य है।

आदर्श कार्य-विधि

भारत में समस्त संयुक्त प्रयास एक ही बुराई के बोझ से दबकर डूब जाते हैं। हमने अभी तक स्वयं में कार्यविधि के सिद्धान्तों के कठोर पालन की वृत्ति विकसित नहीं की है। कार्य को उसके आदर्श रूप में ही करना चाहिए। फिर उसमें किसी 'मित्रता' या प्रचलित मुहावरे के अनुसार 'आँख की लज्जा' को स्थान नहीं मिलना चाहिए। अपने अधिकार में जो भी कोष हो उसके पाई-पाई का लेखा-जोखा रखना चाहिए और भूलकर भी कभी एक मद की धनराशि का किसी दूसरी मद के लिए, चाहे जो हो, यहाँ तक कि अगले ही क्षण भूखों मरने की नौबत पहुँच चुकी हो, तब भी उपयोग मत करो। यही है कार्य-विधि की शुद्धि !

संगठन के स्थायित्व का रहस्य

ऐसा तन्त्र निर्माण करो जो स्वचालित हो। फिर चिन्ता नहीं, कौन जीता है, कौन मरता है। हम भारतीयों का एक बडा भारी दोष यह है कि हम स्थायी संगठन नहीं खड़ा कर पाते। उसका कारण यह है कि हम कभी दूसरों को अपने अधिकारों में सहभागी बनाना नहीं चाहते और कभी यह चिन्ता ही नहीं करते कि हमारे चले जाने के बाद क्या होगा।

पुनरुत्थान का कार्य व कार्यकर्ता

हे भारत !

केवल दूसरों की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर, दूसरों की इस क्षुद्र नकल के द्वारा, दूसरों का ही मुँह ताकते रहकर.....क्या तू इसी पाथेय के सहारे, सभ्यता और महानता के चरम शिखर पर चढ़ सकेगा ?

क्या तू अपनी इस लज्जास्पद कायरता के द्वारा उस स्वाधीनता को प्राप्त कर सकेगा जिसे पाने के अधिकारी केवल साहसी और वीर हैं ?

हे भारत !

मत भूल, तेरे नारीत्व का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती है।

मत भूल कि तेरे उपास्यदेव देवाधिदेव सर्वस्वत्यागी, उमापति शङ्कर हैं।

मत भूल कि तेरा विवाह, तेरी धन-सम्पत्ति, तेरा जीवन केवल विषय-सुख के हेतु नहीं है, केवल तेरे व्यक्तिगत सुखोपभोग के लिए नहीं है।

मत भूल कि तू माता के चरणों में बलि चढने के लिए ही पैदा हुआ है। मत भूल कि तेरी समाज-व्यवस्था उस अनन्त जगज्जननी महामाया की छायामात्र है।

मत भूल कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, अनपढ़, चमार, मेहतर सब तेरे रक्त मांस के हैं, वे सब तेरे भाई हैं।

ओ वीर पुरुष !

साहस बटोर, निर्भीक बन और गर्व कर कि तू भारतवासी है। गर्व से घोषणा कर कि ''मैं भारतवासी हूँ, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है।''

मुख से बोल, ''अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र और पीड़ित भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सभी मेरे भाई हैं ।'' तू भी एक चिथड़े से अपने तन की लज्जा को ढँक ले और गर्वपूर्वक उच्च-स्वर से उद्घोष कर, ''प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं। भारतवर्ष का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरे यौवन की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।''

मेरे भाई !

कह : ''भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।''

अहोरात्र जपा कर, ''हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो। हे शक्तिमयी माँ ! मेरी दुर्बलता को हर लो; मेरी कापुरुषता को दूर भगा दो और मुझे मनुष्य बना दो, माँ।''

भारत फिर उठेगा, किन्तु केवल शारीरिक शक्ति से नहीं अपितु आत्मा के बल से; विध्वंस की पताका के नीचे नहीं, शान्ति और स्नेह के उस ध्वज को लेकर जो संन्यासी के वेष का प्रतीक है।

अपने आन्तरिक देवत्व का आह्वान करो, जो तुम्हें भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी सहने की शक्ति प्रदान करेगा। भोगविलासयुक्त घरों में रहना, जीवन के समस्त सुखों से घिरे रहना और एक तुच्छ अविकसित धर्म को पकड़े रहना अन्य देशों के लिए भले ही उपयुक्त हो, किन्तु भारत के पास सच्ची चेतना है। यह सहज बुद्धि से ही ढोंग को पहचान लेता है। तुम्हें इसे त्यागना होगा। महान् बनो। त्याग के बिना कोई भी महान् कार्य होना सम्भव नहीं।

अपने सुखों की, आनन्दों की, अपने यश की, प्रतिष्ठा की, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी आहुति चढ़ा दो और मानव आत्माओं का ऐसा सेतु बाँध दो, जिस पर होकर ये करोड़ों नर–नारी भवसागर को पार कर जाय। 'सत्य' की समस्त कठिनाइयों को एकत्र करो। यह चिन्ता मत करो कि तुम किस पताका के नीचे चल रहे हो। यह भी चिन्ता मत करो कि तुम्हारा वर्ण क्या है-लाल, हरा या नीला; बल्कि सब वर्णों को मिला दो और स्नेह के प्रतीक श्वेत रंग का प्रखर तेज उत्पन्न करो। हम केवल कर्म करें। परिणाम अपनी चिन्ता स्वयं करेंगे।

मैं भविष्यद्रष्टा नहीं हूँ; न मैं उसके लिये चिन्तित हूँ। किन्तु, एक दृश्य मेरे सामने बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारी प्राचीन मातृभूमि एक बार जग उठी है। वह नवयौवन प्राप्त कर पहले से कहीं अधिक भव्य दीप्ति के साथ अपने सिंहासन पर बैठी हुई है। समस्त संसार को शान्तिपूर्ण और मंगलमय वाणी से उसका सन्देश सुनाओ।

सच्चे सुधारक के तीन अनिवार्य लक्षण

यदि तुम सच्चे सुधारक होना चाहते हो तो तुम में तीन बातें अवश्य होनी चाहिए। उनमें प्रथम है 'सहानुभूति'।

प्रथम हृदय से अनुभव करो

सर्वप्रथम, हृदय से अनुभव करो। तर्क या बुद्धि में क्या धरा है ? यह कुछ दूर तक जाती है और वहीं रुक जाती है, किन्तु हृदय के द्वारा प्रेरणा मिलती है। हृदय का ही सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। हृदय के द्वारा ही भगवान् का साक्षात्कार होता है, न कि बुद्धि के द्वारा। बुद्धि तो सिर्फ सड़क की सफाई करनेवाले के समान है। यह हमारा रास्ता साफ करती है। पुलिसमैन के समान उसका गौण स्थान है। वह समाज के कार्य

सञ्चालन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। पुलिसमैन का कार्य केवल उपद्रवों को रोकना और नियमोल्लंघन के प्रयासों का दमन करना मात्र है। और, हम इतने ही कार्य की अपेक्षा बुद्धि से भी कर सकते हैं। बुद्धि अन्धी होती है, वह स्वयं चल नहीं सकती। उसके न हाथ होते हैं, न पैर। वस्तुतः, भावना ही कार्य करती है। वह विद्युत या किसी भी अन्य चीज की अपेक्षा असंखय गुना तेज गति से चलती है। अतः ''तुम अनुभव करते हो या नहीं ?'' – यही मुख्य प्रश्न है।

बुद्धि भी आवश्यक है ; क्योंकि उसके बिना हम गड्ढे में गिर जायेंगे और भारी गलतियाँ कर बैठेंगे। बुद्धि उनसे बचाती है, किन्तु उससे आगे बढकर वह अपने आधार पर कोई चीज खड़ा नहीं कर सकती। उससे केवल क्रियाहीन और गौण सहायता मिल सकती है। वास्तविक सहायता तो भावना या प्रेम से ही मिलती है।

प्रेम से असम्भव भी सम्भव

प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत् के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अतः, मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, हृदय से अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो ? देव और ऋषियों के करोड़ों वंशज पशुतुल्य बन गए हैं। क्या तुम अनुभव करते हो कि करोड़ों देशवासी आज भूखों मर रहे हैं और करोड़ों युगों से भूखे मरते आ रहे हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि देश पर अज्ञान के काले बादल छाये हुए हैं ? क्या इन सबने तुम्हें बेचैन कर दिया है ? क्या इसने तुम्हारी आँखों से नींद छीन ली हैं ? क्या यह वेदना तुम्हारे रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में पहुँच गई है, तुम्हारी हृदय की धड़कन के साथ एकरूप हो चुकी है ? क्या इसने तुम्हें लगभग विक्षिप्त कर डाला है ? क्या सर्वनाश की इस व्यथा ने तुम्हें पूरी तरह झकझोर डाला है ? क्या तुम अपने नाम, अपने यश, अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपनी धन–सम्पत्ति यहाँ तक कि अपने शरीर को भुला चुके हो ?

गहरी सहानुभूति ही प्रमुख आवश्यकता

गरीबी और अज्ञान में सदा से डूबे हुए उन तीस करोड़ नर–नारियों की वेदना को अनुभव ही कौन करता है ? वे यह भी भूल गए हैं कि वे मनुष्य हैंऔर उसी का परिणाम है गुलामी। कुछ विचारशील लोगों ने विगत कुछ वर्षों में इस बात को समझ लिया है, किन्तु दुर्भाग्य से उन्होंने उसका दोष हिन्दू धर्म के मत्थे मढ़ दिया है। उनकी दृष्टि में इस स्थिति को सुधारने का एक ही मार्ग है कि संसार के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म को कुचल डाला जाय। मेरे मित्रो, मेरी बात सुनो। ईश्वर की कृपा से मुझे इसका रहस्य पता चल गया है। धर्म इसके लिए बिल्कुल दोषी नहीं है।

इसके विपरीत तुम्हारा धर्म तुम्हें बतलाता है कि सब ओर तुम्हारी आत्मा का ही विस्तार हो रहा है, किन्तु इस तत्त्व के व्यावहारिक प्रयोग की कमी है। सहानुभूति का

अभाव है, हृदय का नहीं। भगवान् एक बार पुनः बुद्ध का रूप धारण कर आये और उन्होंने सिखाया कि सहानुभूति क्या होती है ; दरिद्र, दुःखी और पापी के प्रति करुणा क्या होती है ? किन्तु, तुमने उनकी बात भी नहीं सुनी।

संसार का कोई धर्म हिन्दू धर्म के समान मनुष्य की महानता का इतने ऊँचे शब्दों में प्रतिपादन नहीं करता। किन्तु, संसार में कोई धर्म नहीं है जो गरीबों और दुःखियों की गर्दनों को इतनी बुरी तरह कुचलता भी हो जितना कि हिन्दू धर्म। परमात्मा ने मुझे दिखा दिया है कि धर्म का कोई दोष नहीं है। किन्तु, ये हिन्दू धर्म के ठेकेदार और पुरोहित हैं, जो पारमार्थिक और व्यावहारिकता के सिद्धान्तों की आड़ में अत्याचार के नये-नये उपायों का आविष्कार करते हैं।

चिकित्सक की भावना से सेवा करो

हताश न होना ; याद रखना कि भगवान् गीता में कह गये हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

(गीता 2, 7)

कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, उसके फल में नहीं। कमर कसो। प्रभु ने मुझे इसी कार्य के लिये बुलाया है। सम्पूर्ण जीवन मुझे आपदाओं और कष्टों के मध्य से गुजरना पड़ा है। मैंने प्राणप्रिय आत्मीयों को लगभग निराहार मरते देखा है। मेरा उपहास उड़ाया गया है, मुझ पर अविश्वास किया गया है और जिन्होंने मेरा हँसी-मज़ाक बनाया, उन्हीं के प्रति सहानुभूति रखने का दण्ड मुझे भोगना पडा है। मित्रो, यह वही महाकष्टों का आगार पुरुषों और धर्मप्रवर्तकों के लिए शिक्षालय स्वरूप है, जिसमें सहानुभूति, सहिष्णुता और इन सबसे बढकर उस अदम्य दृढ इच्छाशक्ति का विकास होता है, जिसके बल पर मनुष्य सारा जगत् चूर-चूर हो जाने पर भी अपने स्थान से विचलित नहीं होता।

मुझे इन उपहास करनेवालों पर दया आती है, किन्तु यह उनका दोष नहीं है। वे अभी बच्चे हैं, निरे बच्चे- यद्यपि समाज में वे बडे गणमान्य समझे जाते हैं। उनकी आँखें अपने तुच्छ स्वार्थों के संकुचित घेरे से परे कुछ देख ही नहीं पातीं। खाना-पीना, पैसा कमाना और सन्तान उत्पन्न करना ; यही उनके नियमित कार्य हैं, जो घड़ी की सुई के समान वे नियमित रूप से पूरे करते रहते हैं। ये बेचारे अल्पसन्तोषी तुच्छ जीव इसके सिवा और कुछ देख ही नहीं पाते। उनकी नींद कभी टूटती ही नहीं।

सैकड़ों शताब्दियों के दमन के फलस्वरूप भारतीय वायुमण्डल में व्याप्त दुःख, दारिद्र्य और पतन की कतार कराहें, उन्हें झकझोर न पाईं और उनके जीवन को कल्पना-लोक से बाहर लाने में भी समर्थ न हो सकी। उन्होंने कभी उन युगों में झाँका

ही नहीं जिनके मानसिक, नैतिक और शारीरिक अत्याचारों ने ईश्वर की प्रतिमारूपी मनुष्य को भारवाहक पशु बना डाला है ; जिन्होंने माँ भगवती की प्रतिमारूपिणी नारी को केवलमात्र बच्चे पैदा करनेवाली दासी में बदल डाला है, यहाँ तक कि सम्पूर्ण जीवन को ही अभिशाप बना डाला है।

क्या तुम इस निश्चेतन जनसमूह में, जिसकी समस्त नैतिक आकांक्षाएँ मर चुकी हैं; जिसके समस्त भावी स्वप्न मिट चुके हैं और जो अपना भला चाहनेवालों पर भी हमला करने को सदैव तैयार है– प्राण फूँक सकोगे ? क्या तुम उस डाक्टर की स्थिति में रह सकोगे जो एक ठोकर मारनेवाले और गाली देनेवाले बच्चे के गले में भी दवा उतारने के लिए प्रयत्नशील हो ?

जापान में मैंने सुना कि वहाँ की लड़कियों का यह विश्वास है कि यदि गुड़ियों को भी पूरे हृदय से प्रेम किया जाय तो उनमें भी प्राण आ जाते हैं। इसीलिए जापानी लड़कियाँ कभी अपनी गुड़ियों को नहीं तोड़तीं। महाभाग्यवानो ! मेरा भी यही विश्वास है कि यदि कोई भारत की जनता का जो समृद्धि की कृपा से वञ्चित तथा ऐश्वर्य से हीन है ; जिनका विवेक भ्रष्ट हो चुका है; जिसकी स्वयंप्रेरणा नष्ट हो चुकी है; जो पददलित, भूखी, झगड़ालू और ईर्ष्यालु है– उस जनता को हृदय से स्नेह करेगा तो यह देश पुनः उठ खड़ा होगा। भारत दोबारा तभी उठ सकेगा जब सैकड़ों विशाल हृदय युवक–युवतियाँ सुखोपभोग की समस्त कामनाओं को तिलाञ्जलि दे अपने करोड़ों देशवासियों के, जो धीरे–धीरे दरिद्रता और अज्ञान के गहन गर्त में गिरते जा रहे हैं, कल्याण के हेतु अपनी पूरी शक्तियाँ लगाने का संकल्प लेंगे।

क्या तुमने उपाय खोजा ?

क्या तुम सहानुभूति के भाव से भरे हो ? यदि हो तो यह केवल प्रथम पग है। अगला प्रश्न है कि क्या तुम्हें रोग की कोई औषधि भी मिल गई है ? पुराने विचारों को तुम अन्धविश्वास भले ही समझो, किन्तु अन्धविश्वासों के इसी ढेर में सत्य के स्वर्ण–कण भी छिपे हैं। क्या तुमने ऐसा कोई उपाय सोचा है जिसके द्वारा निस्सार–तत्त्व को त्यागकर इन स्वर्णकणों की रक्षा की जा सके ?

शुद्ध एवं अदम्य इच्छाशक्ति हेतु

अपनी शक्तियों के केवल निरर्थक चर्चा में खर्च करने के बजाय क्या तुमने कोई मार्ग अथवा व्यावहारिक हल खोजा? निन्दा के बदले सहायता का कोई कार्य ढूँढा ? उनकी पीड़ा में सहलाने के लिए, उन्हें इस जीवित नरक से बाहर निकालने के लिए कुछ मधुर शब्द अपनाये ?

यदि तुमने यह सब कर लिया तो यह केवल दूसरा पग होगा। इसके अतिरिक्त एक

और बात भी आवश्यक है, तुम्हारी कर्म–प्रेरणा का मूल क्या है ? क्या तुम्हें पूर्ण निश्चय है कि तुम्हारी प्रेरणा का मूल धन–लोलुपता या प्रसिद्धि और सत्ता–लोलुपता नहीं है ?

केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। क्या तुममें हिमालय जैसी बाधाओं का पार करनेवाली दृढ इच्छाशक्ति है ? यदि सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे विरुद्ध तलवार लेकर खड़ा हो जाय तब भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे स्त्री–पुत्र ही तुम्हारे प्रतिकूल हो जायें, यदि तुम्हारा सर्वस्व चला जाय, यदि तुम्हारा नाम मिट जाय, तब भी क्या तुम इस कार्य में लगे रहोगे ? फिर भी क्या तुम अपने पथ पर डटे रहोगे, अपने लक्ष्य की ओर धीरतापूर्वक बढते रहोगे ? और जैसा कि राजा भर्तृहरि ने कहा है ?

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

(भर्तृहरि नीतिशतक)

''मनीषी लोग चाहे निन्दा करें चाहे स्तुति, लक्ष्मी रहे या चली जाय, आज ही मृत्यु हो या सौ वर्ष पश्चात्, किन्तु धीर पुरुष न्याय के पथ से विचलित नहीं होते।'' क्या तुममें यह दृढता है ?

ध्येय के प्रति पूर्ण समर्पण का संकल्प करो

यदि तुममें ये तीनों चीजें हैं तो तुममें से प्रत्येक अलौकिक कार्य कर सकता है। फिर तुमको समाचारपत्रों में लिखने की आवश्यकता नहीं, तुमको व्याख्यान देते फिरने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे चेहरे पर एक अपूर्व आभा विराजेगी। यदि तुम पर्वत कन्दराओं में रहो, तब भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को तोडकर बाहर निकलेंगे और सैकडों वर्ष तक समग्र संसार में भ्रमण करते रहेंगे–तब तक, जब तक वे किसी मस्तिष्क में आश्रय न पा लें और उसके द्वारा कार्यान्वित न हो जायें। यह है सामर्थ्य विचारशक्ति, प्रामाणिकता और शुद्ध ध्येयवादिता का !

यह एक दिन का कार्य नहीं है। यह मार्ग अत्यन्त तीक्ष्ण काँटों से भरा है। किन्तु, स्वयं पार्थसारथि (कृष्ण) हमारे सारथि बनने को तैयार हैं। हम जानते हैं कि उनमें अटल श्रद्धा के सहारे हम भारत की छाती पर युगों से एकत्र आपदाओं के पहाड़ में आग लगाने में समर्थ होंगे और वह भस्मीभूत होकर रहेगा।

पार्थसारथि के मन्दिर में जाओ। उसके सम्मुख मस्तक नवाओ जो गोकुल के दीन–हीन ग्वालों का सखा था, जो गुह व चाण्डाल का आलिंगन करने में भी कभी नहीं

झिझका, जिसने अपने बुद्धावतार में कुलीनों का निमन्त्रण ठुकराकर एक वेश्या का निमन्त्रण स्वीकार किया और उस पतिता का उद्धार किया। अरे ! अपने मस्तकों को उसके सामने झुकाओ और बड़ा बलिदान करो। अपना सम्पूर्ण जीवन उनके लिए बलिदान कर दो जिनके लिए ही वह समय-समय पर अवतार धारण करता है; जिन गरीबों, दलितों, हीनों को वह सबसे अधिक प्यार करता है। तब, संकल्प करो अपने सम्पूर्ण जीवन को इन तीस कोटि भारतवासियों के पुनरुद्धार के महायज्ञ में आहूत करने का जो दिनोदिन पतन के गर्त में जा रहे हैं।

श्रद्धा

अतः बन्धुओ ! आओ और इस समस्या की ओर निहारो। यह कितना बड़ा प्रयास होगा और हम उसकी तुलना में कितने तुच्छ ! किन्तु, हम प्रकाश के पुत्र हैं और ईश्वर की सन्तान। ईश्वर की कृपा से हम अवश्य सफल होंगे। इस संघर्ष में सैंकड़ों धराशायी होंगे, किन्तु सैंकड़ों ही उनकी जगह लेने को तैयार भी रहेंगे। मैं यहाँ भले ही असफल रहकर मर जाऊँ, किन्तु कोई दूसरा मेरा कार्य पूरा करेगा। तुम बीमारी जान चुके हो, तुम उसका इलाज भी जानते हो। केवल आत्मविश्वास रखो। इन तथाकथित अमीरों और प्रतिष्ठितों की ओर मत निहारो, इन हृदयहीन बुद्धिवादी लेखकों की चिन्ता मत करो, न उनके द्वारा अखबारों में प्रकाशित हृदयशून्य लेखों की परवाह करो। आत्मविश्वास और सहानुभूति ! प्रबल आत्मविश्वास एवं तीव्र सहानुभूति !! यही तुम्हारा एकमात्र सम्बल है। विश्वास ! विश्वास !! विश्वास !!! अपने में विश्वास, ईश्वर में विश्वास-बस यही महानता का मूल मन्त्र है।

नचिकेता की श्रद्धा तुममें प्रविष्ट हो

जिसको स्वयं पर विश्वास नहीं, वही नास्तिक है। तुममें से जिनलोगों ने समस्त उपनिषदों में अति सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है, उन्हें स्मरण होगा कि किस प्रकार उस राजा ने एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया था, किन्तु दक्षिणा में छाँट-छाँटकर वह ऐसी बूढ़ी गायों एवं घोड़ों को दे रहा था जो किसी काम के नहीं रह गए थे। (कथा के अनुसार उसके पुत्र नचिकेता को पिता का यह कृत्य नहीं रुचा उसने पिता से पूछा कि ''आप मुझे किसे देंगे ?'' बार-बार ऐसा पूछने पर पिता ने झुँझलाकर उत्तर दिया ; ''मैं तुझे यम को दूँगा।'') उक्त ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि उस समय श्रद्धा ने उसके पुत्र नचिकेता के अन्तःकरण में प्रवेश किया। अब हम देखें कि उसने (श्रद्धा ने) किस प्रकार कार्य किया, क्योंकि उसके प्रवेश के दूसरे ही क्षण हम नचिकेता को स्वयं से यह कहते हुए सुनते हैं :

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद्यमस्य कर्त्तव्यं मन्मयाद्य करिष्यति ।।

(कठोपनिषद् 1.1.5)

''मैं अनेकों से श्रेष्ठ हूँ, थोड़े मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, किन्तु मैं किसी भी प्रकार सबसे हीन नहीं हूँ। अतः मैं कुछ-न-कुछ कर सकता हूँ।''

उसका यह आत्मविश्वास बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा। वह समस्या थी मृत्यु की। इस समस्या का हल केवल मृत्यु के घर जाकर ही प्राप्त हो सकता था, अतः वह बालक वहीं गया। वहाँ उस निर्भीक बालक नचिकेता ने मृत्यु के द्वार पर तीन दिन प्रतीक्षा की और तुम जानते ही हो किस प्रकार उसने अपनी अभीप्सित वस्तु प्राप्त की।

इसी श्रद्धा को तुम सब प्राप्त कर लो। पश्चिमी जातियों के द्वारा भौतिक सत्ता का जो कुछ प्रकटीकरण तुम्हें दिखायी दे रहा है, वह इस श्रद्धा का ही परिणाम है ; क्योंकि उन्हें अपनी कर्मशक्ति पर विश्वास है। फिर, यदि तुम भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर आस्था रखो तो उससे भी कितना ही अधिक कार्य कर सकते हो !

यही श्रद्धा है जो मैं चाहता हूँ और हम सब उसी के अर्थात् आत्मविश्वास के भूखे हैं। उस श्रद्धा को प्राप्त करना ही तुम्हारे सामने बड़ा कार्य है। प्रत्येक चीज का उपहास उड़ाने की, गम्भीरता के भारी अभाव की इस भयानक बीमारी के चंगुल से बचो जो हमारे राष्ट्रीय शोणित में घुसती जा रही है। इसको त्याग दो। वीर बनो, श्रद्धासम्पन्न बनो। अन्य सब बातें इनके पीछे-पीछे अपने आप चली आयेंगी।

वैराग्य परम आवश्यक गुण

काम में लग जाओ। तब तुम अपने अन्दर इतनी प्रचण्ड शक्ति का जागरण पाओगे कि उसे धारण करना भी तुम्हें कठिन जान पड़ेगा। अन्यों के लिए किए गए अत्यल्प कार्य से भी आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है। यहाँ तक कि अन्यों के प्रति शुभ चिन्तन से भी शनैः-शनैः हृदय में सिंह की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

आवश्यक वस्तु है वैराग्य। वैराग्य के बिना कोई भी अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण को परोपकार में नहीं उड़ेल सकता। विरागी मनुष्य ही सबको समान दृष्टि से देखता है और सबकी सेवा में अपने को लगा सकता है।

सेवा से ही मुक्ति

अतः, वैराग्य धारण करो। तुम्हारे पूर्वजों ने महान् कार्य करने के लिए संसार को त्याग दिया था। वर्तमानकाल में भी ऐसे लोग हैं जो अपनी व्यक्तिगत मुक्ति के लिए संसार से विरक्त हो जाते हैं। सब बातों को त्याग दो, यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी त्याग दो और दूसरों की सहायता करो।

कुछ समय के लिए अन्य सब देवताओं को अपनी दृष्टि से ओझल कर दो। बस यही एक देवता, हमारा अपना समाज, अहर्निश हमारी आँखों के समक्ष प्रत्यक्ष है। सर्वत्र

उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर और सब ओर उसके कान। वह सब ओर व्याप्त है। समझ लो कि अन्य सब देवता सो रहे हैं। उन व्यर्थ देवताओं के पीछे तो हम दौड़ें, किन्तु इस देवता की, इस विराट् पुरुष की, जिसे हम अपने चारों ओर देख रहे हैं क्यों न पूजा करें ? जब हम इसकी पूजा कर लेंगे तभी हम अन्य देवताओं की पूजा करने के योग्य होंगे।

मुक्त वही है जिसने अपना सब कुछ दूसरों के लिए त्याग दिया। किन्तु, जो दिन-रात 'मेरी मुक्ति', 'मेरी मुक्ति' का राग अलापने में ही अपने मस्तिष्क को खराब करते हैं वे अपने वर्तमान और भावी कल्याण का नाश कर व्यर्थ ही इधर-उधर भटकते रहते हैं।

आज आवश्यकता है चित्तशुद्धि की, अन्तःकरण की निर्मलता की। किन्तु, वह कैसे हो ? सबसे पहले उस विराट् की पूजा करो जो हमारे चारों ओर विद्यमान है। उसकी पूजा करो। ये सब हमारे देवता हैं- केवल मनुष्य ही नहीं ; पशु भी। इनमें भी सबसे पहले पूजा करो अपने देशवासियों की।

हमें चाहिए त्यागी और समाजसेवी लोग

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं-सेवा और त्याग। इन्हीं मार्गों से उनकी भावनाओं को तीव्र करो, शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा। इस देश में आध्यात्मिकता का माहात्म्य चाहे जितना गाओ, वह कम ही है। इसी में मुक्ति निहित है।

मैं चाहता हूँ लौह पेशियाँ और इस्पात के स्नायु जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है, जिनका वज्र बनाया जाता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्र-वीर्य-ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर एवं होनहार युवकों के पास ये सब चीजें हैं- यदि केवल उन्हें उस क्रूरता की वेदी पर- जिसे वे विवाह कहते हैं- बलि न किया जाय। हे भगवान् ! मेरी पुकार सुनो !

कुछ को इससे (विवाह से) बचा रहने दो। उन्हें केवल ईश्वर के लिए जीने दो, ताकि वे दुनिया के लिए धर्म की रक्षा कर सकें। राजा जनक के जैसा होने का ढोंग मत करो, जबकि तुम केवल सपनों के जनक हो। (जनक शब्द का अर्थ है 'निर्माता' और यह नाम एक राजा का था, जिसने केवल प्रजापालन के हेतु राजपद ग्रहण किया था और सब आसक्तियों को त्याग दिया था।) ईमानदार बनो और कहो, ''मुझे आदर्श दिखायी तो पड़ता है, किन्तु अभी मैं इसके निकट नहीं पहुँच सकता।'' यदि तुम विरागी नहीं हो, तो उसका दिखावा मत करो। यदि तुमने वैराग्य धारण किया है तो दृढतापूर्वक डटे रहो। यदि लड़ाई में सैकड़ों बार गिर चुके हो, तो भी पताका को थाम लो और उसे लेकर आगे बढ़ो। ईश्वर सबका साक्षी है। चिन्ता मत करो कि कौन गिरता है। जो गिरने लगे वह पताका को केवल दूसरे हाथों में थमा दे, तब यह कभी नहीं गिर पायगी।

एक लाख नर और नारी–पवित्रता की अग्नि में तपे हुए, भगवान् में अटूट विश्वास से सम्पन्न और दीनों, दलितों तथा पतितों के प्रति सहानुभूति में सिंहवत् साहस से युक्त–सम्पूर्ण देश के एक कोने से दूसरे कोने तक मुक्ति का सन्देश, सेवा का सन्देश, सामाजिक उत्थान का सन्देश, समता का सन्देश फैलायेंगे।

भगवान के सेवक बनकर कर्मक्षेत्र में उतरो

बार–बार हमारा देश पतन के गर्त में गिरा है और बार–बार भगवान् ने अवतार लेकर उसका पुनरुद्धार किया है।

मृतक कभी वापस नहीं आते, बीती हुई रात दोबारा नहीं आती, गुजरी हुई ज्वार की लहर फिर–फिर नहीं उठती, न ही मनुष्य उसी देह को पुनरपि पाता है। अतः ओ मनुष्य ! हम तुम्हें मृत अतीत की उपासना से हटाकर जीवित वर्तमान की पूजा के लिए आमन्त्रित कर रहे हैं। बीती बातों का रोना रोने की अपेक्षा हम तुम्हें वर्तमान की गतिविधियों में लगने का आह्वान कर रहे हैं। भूली–बिसरी एवं भग्न पगडण्डियों की खोज में कार्य–शक्ति नष्ट करने के बजाय हम तुम्हें पुकार रहे हैं, नवनिर्मित विशाल पथ पर चलने के लिए, जो कि तुम्हारे सम्मुख फैला हुआ है। जो बुद्धिमान् है, वह इस बात को समझ ले।

जिस दिव्य शक्ति के प्रथम स्पर्श से ही सम्पूर्ण विश्व में सब ओर महातरंगें उठने लगी हैं, उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति की जरा अपने मस्तिष्क में कल्याणमयी कल्पना करो और वृथा सन्देह, दुर्बलता और दासजाति–सुलभ ईर्ष्या–द्वेष का परित्याग कर, इस महायुग–चक्र प्रवर्तन में सहायक बनो।

हृदय में यह प्रबल धारणा लेकर कि तुम परमात्मा के दूत हो, उसकी सन्तान हो, उसके उद्देश्यों की पूर्ति में निमित्त मात्र हो, कर्मक्षेत्र में कूद पड़ो।

सच्चा कार्य

जब हमारा 'अहं' ज्ञान नहीं रहता, तभी हम अपना सर्वोत्तम कार्य कर सकते हैं, दूसरों को सर्वाधिक प्रभावित कर पाते हैं। सभी महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति इस बात को जानते हैं। उस दिव्य कर्ता के प्रति अपना हृदय खोल दो, तुम स्वयं कुछ भी करने मत जाओ। उनके ऊपर पूर्णतया निर्भर रहो, पूर्ण रूप से अनासक्त रहो। ऐसा होने पर ही तुम्हारे द्वारा कुछ यथार्थ कार्य हो सकता है । - स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द केन्द्र : मञ्च युवा शक्ति का

युवा में प्रचण्ड ऊर्जा होती है । उस ऊर्जा का प्रयोग हम चाहते हैं कि किसी रचनात्मक कार्य में हो। हम ऐसा कुछ कर दिखायें कि सब देखते रह जायें। कुल मिलाकर हम अपने जीवन में कुछ सार्थक, उपयोगी तथा प्रभावी कार्य करना चाहते हैं। किन्तु परिस्थितियों के कारण हम ऐसा करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, भ्रष्टाचार आदि के कारण हम अस्वस्थ होते हैं। कुछ करना चाहते हैं किन्तु मार्ग नहीं मिलता। ऐसे में दो ही मार्ग होते हैं। या तो परिस्थितियों से समझौता कर लें अथवा केवल अपने व्यक्तिगत जीवन को सँवारने में लग जाएँ।

क्या कोई मार्ग ऐसा हो सकता है कि अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्णता के साथ ही राष्ट्र एवं समाज के लिये भी योगदान कर सकें। अपने जीवन में सार्थकता की अनुभूति का माध्यम ही समाज के प्रति योगदान बन जाये ? स्वामी विवेकानन्द का कथन Be and Make स्वयं पवित्र, चरित्रवान्, तेजस्वी बनो तथा औरों को भी ऐसा बनाओ। इस अनोखे वचन को साकार करने हेतु विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी का सूत्रपात हुआ।

केन्द्र, युवाओं का, युवाओं के लिये एक ऐसा मञ्च है जो व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण विकास के साथ ही समाज एवं राष्ट्र से जुड़कर योगदान करने का अवसर प्रदान करता है। केवल 39 वर्ष की आयु में पूरे विश्व के सम्मुख राष्ट्र का गौरव स्थापित कर, हिन्दुओं को संगठन एवं सेवा की प्रेरणा देने वाले स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक विचारों को जीवन्त करने का कार्य देशभक्ति से ओतप्रोत युवा ही कर सकते हैं। 1962 में चीन युद्ध में पराजय के बाद निराश राष्ट्र को संजीवनी देने का कार्य स्वामी विवेकानन्द की जन्मशती 1963 में आयोजित स्वयं स्फूर्त आयोजनों ने किया। इसी समय स्वामीजी के लक्ष्य निर्धारण की बोधिस्थली कन्याकुमारी में तीन समुद्रों के संगम पर, बीच सागर में स्थित श्रीपाद शिला पर एक भव्य स्मारक बनाने का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। माननीय एकनाथ रानडे ने युवाओं की टोली का नेतृत्व किया और सारे राष्ट्र ने अनोखे योगदान से स्मारक का निर्माण किया।

जीवन्त स्मारक

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे- हम सब में ईश्वर है। आवश्यकता है केवल उसे प्रगट करने की । इस ईश् वर को जगाने से प्रचण्ड शक्ति खडी हागे । हममें आत्मविश्वास आ जाएगा। स्वामीजी ने अपने अन्दर छिपे भगवान् को व्यक्त करने का मार्ग भी बताया

था। 'मानव सेवा ही माधव सेवा।' इसी बात को साकार करने के उद्देश्य से माननीय एकनाथजी ने शिलास्मारक के दूसरे चरण के रूप में विवेकानन्द केन्द्र की स्थापना की। एक अध्यात्म-प्रेरित सेवा संगठन के रूप में प्रत्येक भारतवासी के अन्दर प्रेरणा जगाने का वैचारिक आन्दोलन। स्वामी विवेकानन्द के विचारों का जीवन्त स्मारक ...

दो लक्ष्य कार्य के . . .

हम भारतवासी स्वभावत: धार्मिक हैं। किन्तु हमारी धार्मिकता केवल बाहरी उपासना, पूजा में ही रह गई है। माननीय एकनाथजी ने केन्द्र के सामने दो लक्ष्य रखे -

1. **व्यक्ति निर्माण** - प्रत्येक के अन्दर की सोई आत्मशक्ति को जागृत कर बालक से वृद्ध तक सभी भारतमाता के सपूतों, भाई-बहनों को अपने-अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए प्रेरित करना। जैसे देवी कन्याकुमारी व स्वामीजी ने अपने जीवन के लक्ष्य को पहचाना वैसे ही हम सब भी जानें और उसके अनुसार कार्य करें।

2. **राष्ट्र-पुनर्निर्माण** - इस प्रकार से जागृत शक्ति को, देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत कार्यशक्ति को राष्ट्र पुनर्निर्माण के कार्य में लगाना। हमारी भारतमाता पूर्व के समान ही विश्वगुरु बनें, इस हेतु समर्थ-सशक्त भारत के निर्माण हेतु कार्य करना।

चार सूत्र: संगठन के ...

माननीय एकनाथजी मानते थे कि हम भारतीय मूलत: संगठित जीवन जीने वाले हैं। किन्तु 2000 वर्ष के विदेशी आक्रमण, उनसे सतत संघर्ष और विदेशी शिक्षापद्धति के कारण आयी मानसिक दासता (गुलामी) के कारण संगठन को भूल गये और बाहरी भेदभावों में उलझ गये। जाति, भाषा, प्रांत के बँटवारों से अखण्ड भारत की पूजा करना भूल गये। संगठन के लिए उन्होंने चार सूत्र दिए -

1. **लोक सम्पर्क** - अधिक से अधिक लोगों तक सकारात्मक विचार ले जाना।

2. **लोक संग्रह** - फिर उनमें से कुछ प्रेरित लोगों को चुनकर उनको जोड़ना। संगठन के कार्य में कार्यकर्ता बनाना।

3. **लोक संस्कार** - ऐसे कार्यकर्ताओं को संस्कार देना। प्रशिक्षण देना। अपने आचरण, व्यवहार व चरित्र द्वारा लोगों को प्रभावित करने हेतु तैयार करना। दायित्वबोध के साथ लोक सम्पर्क ओर संग्रह के कार्य हेतु तैयार करना।

4. **लोक व्यवस्था** - प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को दायित्व प्रदान कर इस कार्य को देश के कोने-कोने में फैलाने हेतु व्यवस्था करना। कार्यकर्ता अपने समान और कार्यकर्ता जोड़ता है।

कार्य का आधार : कार्यकर्ता

इन चार सूत्रों पर आधारित कार्यप्रणाली के माध्यम से केन्द्र का कार्य 21 राज्यों में 241 नगर स्थानों पर चल रहा है। असंख्य कार्यकर्ता अपनी पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों को निभाते हुए केन्द्र के कार्य के लिये कुछ समय निकालते हैं। ये स्थानिक कार्यकर्ता ही कार्य के प्रमुख प्रसारक है। कुछ के मन में ऐसी प्रेरणा जगती है कि अपने जीवन के कुछ वर्ष पूरी तरह इस पूजा में चढ़ाए जाएँ। ऐसे 3 से 5 वर्ष हेतु पूरा समय केन्द्र का काम करने वाले कार्यकर्ता सेवाव्रती कहलाते हैं । कुछ कार्यकर्ताओं को लगता है कि मेरा जन्म इसी कार्य हेतु हुआ है। वे अपने पूरे जीवनभर इसी कार्य को करने का व्रत लेते हैं। पाँच साल के प्रशिक्षण के दौरान इन्हें शिक्षार्थी कहा जाता है। 30 वर्ष से कम आयु के स्नातक, अविवाहित युवक-युवतियाँ शिक्षार्थी बनते हैं। पाँच साल के व्यावहारिक और वैचारिक प्रशिक्षण के बाद दीक्षा होती है। शिक्षार्थी कार्यकर्ता, सम्पूर्ण शुचिता (पवित्रता), अपरिग्रह (आवश्यकता कम करना) और आज्ञापालन की प्रतिज्ञा लेकर जीवनव्रती हो जाते हैं। ये जीवनव्रती समाज में प्रेरणा जगाने का कार्य करते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद ऊर्जावान्, अनुभवी कार्यकर्ता भी पूरा समयदान करते हैं। वानप्रस्थी कार्यकर्ता के रूप में इन सबके योगक्षेम (आजीविका) का वहन विवेकानन्द केन्द्र प्रतिष्ठान करता है। प्रतिष्ठान के एक लाख से अधिक परिपोषक इस हेतु नियमित दान देते हैं। तीन प्रकार से परिपोषक बना जा सकता है :-

- **वार्षिक दानकारी परिपोषक** - कम से कम 100 रुपये प्रतिवर्ष
- **एकीकृत दानकारी परिपोषक** - कम से कम 500 रुपये दस वर्ष के लिये
- **अक्षय दानकारी परिपोषक** - कम से कम 5000 रुपये सदा के लिये

तीन अङ्ग. . . कार्यपद्धति के

प्रत्येक व्यक्ति को जगाना। उसे स्वयं को पवित्र, चारित्र्य सम्पन्न बनने के लिए प्रेरित करना। इस हेतु केन्द्र ने एक परिपूर्ण कार्यपद्धति विकसित की है। सहज, सुलभ, नि:शुल्क सभी आयु वर्ग के भाई-बहनों को सम्मिलित करने वाली इस कार्य पद्धति के तीन मुख्य अङ्ग है -

1. **योग वर्ग** - प्रतिदिन, व्यक्ति के सर्वांगिण विकास हेतु योग को एक जीवन पद्धति के रूप में अपनाना। आसन, प्राणायाम, सूर्यनमस्कार, गीत, भजन एवं बौद्धिक परिचर्चा द्वारा व्यक्ति को स्वयं से, समाज से व राष्ट्र से जोड़ने का कार्य योग -वर्ग द्वारा होता है। स्थान-स्थान पर प्रशिक्षित सेवाभावी कार्यकर्ता योग-वर्ग का सञ्चालन करते हैं।

2. **स्वाध्याय वर्ग** - व्यक्ति के निर्माण से राष्ट्र के पुनरुत्थान दोनों के लिए विचारों

में सकारात्मक बदलाव आवश्यक है। स्वाध्याय वर्ग में साप्ताहिक, सामूहिक रूप से किसी अच्छी पुस्तक का अध्ययन करते हैं। स्वामीजी का साहित्य प्रेरक अग्नि मन्त्रों से भरा है। अलग-अलग समूहों के लिए स्थान-स्थान पर, विद्यालय, महाविद्यालय, मन्दिर, सामूहिक भवन में स्वाध्याय वर्ग सञ्चालित किए जाते हैं।

3. **संस्कार वर्ग** - 6 से 15 वर्ष की आयु में ही मनुष्य का निर्माण होता है। यदि इसी आयु में आदर्श जीवन के संस्कार हो जाए तो समाज का भला हो सकता है। क्या हम बालक भी ध्रुव, प्रह्लाद, नचिकेता, अभिमन्यु के समान, साहसी, वीर, श्रद्धा सम्पन्न व देशभक्त बन सकते हैं? हाँ, यदि हम नियमित साप्ताहिक संस्कार-वर्ग में जाते हैं और बड़े होकर संस्कार-वर्ग के शिक्षक बनते हैं तो यह सम्भव है। भारतमाता को जगद्गुरु बनाने हेतु इससे बढ़िया अवसर नहीं है और वह भी खेल-खेल में। संस्कार वर्ग में जाने वाले बालक-बालिका का शरीर शक्तिशाली होता है खेल व सूर्यनमस्कार से। इसी से मन भी तेज होता है। एकाग्रता तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है और पढ़ाई सरल हो जाती है। भावों का संस्कार होता है गीतों, भजनों, स्तोत्र व गीता पठन से। विचारों में स्पष्टता आती है कहानी और छोटे-छोटे संकल्पों से। आपके घर के पास ही चलने वाले संस्कार वर्ग में आज से जाना प्रारम्भ कर दें। नहीं है तो आप ही चालू कर दें। हमारे कार्यकर्ता सहयोग को तत्पर हैं।

कार्यपद्धति के तीनों अङ्गों में पूरा परिवार जुड़ जाये। माँ-पिताजी, दादा-दादी, योग-वर्ग, स्वाध्याय-वर्ग में जाएँ। भैया-दीदी स्वाध्याय वर्ग में जाएँ, संस्कार-वर्ग के शिक्षक बनें। नन्हें-मुन्ने छोटे बच्चे खेलें संस्कार-वर्ग में और हमारा पूरा परिवार बन जाए आदर्श अमृत परिवार।

कार्यक्रम और भी हैं . . .

हमारे उत्सव - राष्ट्रीय स्तर पर गुरुपूर्णिमा (आषाढ़ पूर्णिमा), विश्वबन्धुत्व दिवस (11 सितम्बर), साधना दिवस (माननीय एकनाथजी की जयन्ती 19 नवम्बर), गीताजयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी) तथा समर्थ भारत पर्व (25 दिसम्बर से 12 जनवरी) ये पाँच उत्सव केन्द्र शाखाओं पर मनाए जाते हैं।

शिविर

- **योग शिक्षा शिविर** - केन्द्र के मुख्यालय कन्याकुमारी के सुरम्य परिसर विवेकानन्दपुरम् में मई व दिसम्बर माह में 18 से 55 वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों हेतु।
- **अध्यात्म-साधना शिविर** - 45 से 70 वर्ष आयु वर्ग के स्त्री-पुरुषों हेतु कन्याकुमारी में फरवरी व अगस्त माह में।

- **व्यक्तित्व विकास शिविर** - 12 से 18 वर्ष के भैया-बहनों के लिए।
- **युवा प्रेरणा शिविर** - 18 से 35 वर्ष के युवाओं के लिए।
- **बाल संस्कार शिविर** - 8 से 12 वर्ष के युवाओं के लिए।

योग सत्र

- **योगासन सत्र** - 7-10-15 दिन के अनिवासी सत्र
- **प्राणायाम सत्र** - 5-7 दिन अनिवासी सत्र

ध्यान सत्र

ॐकार ध्यान, मन्त्र ध्यान, संजीवनी ध्यान, प्रतिमा ध्यान व भावानुसंधान,ध्यान सत्र केन्द्र के प्रशिक्षित कार्यकता के द्वारा संचालित होता है।

प्रतियोगिताएँ

पूरे देश में विद्यालय एवं महाविद्यालयों के छात्रों में भिन्न-भिन्न नाम से सांस्कृतिक परीक्षाएँ होती है। जिसमें लाखों छात्र सहभागी होते हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्र में विवेकानन्द प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता - 5 वीं से 12 वीं कक्षा हेतु तथा उठो ! जागो ! युवा प्रतियोगिता - महाविद्यालय स्तर पर आयोजित होती है।

हमारे प्रकाशन

पूरे देश में भिन्न-भिन्न भाषाओं में साहित्य एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। अँगरेजी प्रकाशन चैन्नई से तथा हिन्दी प्रकाशन जोधपुर से होता है। पत्रिकाओं की सूची-

क्र.	नाम	अवधि	भाषा	वार्षिक	आजीवन
1	केन्द्र पत्रिका	छः माही	अँगरेजी	250 रु.	2000 रु.
2	युवा भारती	मासिक	अँगरेजी	160 रु.	1400 रु.
3	केन्द्र भारती	मासिक	हिन्दी	125 रु.	1100 रु.
4	विवेक वाणी	मासिक	तमिल	50 रु.	500 रु.
5	विवेक सुधा	त्रैमासिक	गुजराती	50 रु.	---
6	विवेक जागृति	त्रैमासिक	आसामी	55 रु.	500 रु.
7	विवेक विचार	मासिक	मराठी	100 रु.	---

हमारे प्रकल्प

देश की स्थानिक आवश्यकताओं के अनुसार अनेक सेवा प्रकल्पों का सञ्चालन भी केन्द्र द्वारा किया जाता है।

विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय - अरुणाचल प्रदशे में 34, आसाम में 18, नागालैण्ड में 1, अण्डमान निकोबार में 8, तमिलनाडु में 3 तथा कर्नाटक में 1 कुल 65 विद्यालय।

ग्राम विकास प्रकल्प - तमिलनाडु, कर्नाटक व बिहार के 6 जिलों के 450 गाँवों में शिक्षा, स्वास्थ एवं सांस्कृतिक विकास का परिपूर्ण प्रकल्प।

अरुण ज्योति प्रकल्प - अरुणाचल प्रदेश के बस्ती-बस्ती में संस्कृति की विकास करने हेतु युवा मञ्च, महिला मञ्च, स्वास्थ सेवा मञ्च, अनौपचारिक शिक्षा मञ्च, सांस्कृतिक मञ्च के माध्यम से परम्पराओं के संरक्षण करने की प्रयास होता है।

प्राकृतिक संसाधन विकास प्रकल्प - प्रकृति के साथ सामंजस्य से विकास अक्षय अविनाशी बनाने वाली तकनीक को ग्राम-ग्राम में पहुँचाने का ग्रामोदय प्रकल्प।

विवेकानन्द केन्द्र संस्कृति संस्थान - गुवहाटी में स्थित, पूर्वोत्तर राज्यों के वनवासी, जनजातीय संस्कृति के अध्ययन, अभिलेखन पूरे देश की प्राचीन संस्कृति के साथ समन्वय के अनुसंधान एवं प्रसार का प्रकल्प।

वैदिक दृष्टि प्रतिष्ठान - कोडंगलुर केरल में मुख्य, वैदिक जीवन दृष्टि को पारिवारिक जीवन में व्यावहारिकता से उतारने का अभिनव प्रयोग।

विवेकानन्द केन्द्र उत्कल सेवा केन्द्र - ओडिशा के ग्रामीण और जंगली क्षेत्रों के लोगों को इस प्रकल्प के माध्यम से स्वास्थ सेवाएं, शिक्षा के साथ ही व्यवसाथिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

विवेकानन्द इन्टरनेशनल फाउण्डेशन - सम्पूर्ण मानवता को सुखी करने की क्षमता रखने वाली हिन्दू जीवन दृष्टि को वैज्ञानिकता से विश्वमञ्च पर स्थापित करना। विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य स्वस्थ विमर्श का मञ्च प्रदान करना। लुप्तप्राय, पीड़ित उपासना पद्धतियों को संगठित संवर्द्धित करने में सहयोग प्रदान करना, इन उद्देश्यों से स्थापित। दिल्ली में भव्य भवन के निर्माण का कार्य जारी।

इनके अलावा चिकित्सा, स्वरोजगार एवं तकनीकी प्रशिक्षण हेतु अनन्य अनेक प्रकल्पों को देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर सञ्चालित किया जा रहा है।

आह्वान

भारत माता को जगद्गुरु बनाने हेतु कृतसंकल्प इस सेवा संगठन, वैचारिक आन्दोलन विवेकानन्द केन्द्र कन्याकुमारी के अङ्ग बनें; कार्यकर्ता परिपोषक अथवा पत्रिकाओं के सदस्य बन कर तन-मन-धन से राष्ट्रयज्ञ में आहुति दें। अपने जीवन में संकल्प के साथ निश्चित समयदान दें।

आवेदन-पत्र

नाम: ____________________

पिता का नाम: ____________________

पता : ____________________

____

____________________ दूरभाष सं : ____________________

ई-मेल : ____________________ मोबाईल सं. : ____________________

जन्मतिथि : ____________________

महाविद्यालय : ____________________

कक्षा : ____________________ लिंग ____________________

आवेदक के हस्ताक्षर

केन्द्र कार्यकर्ता हस्ताक्षर

परिचय पत्र

नाम: ____________________

महाविद्यालय : ____________________

कक्षा : ____________________

कार्यकर्ता हस्ताक्षर